वर्ष 32 अंक 11 नवम्बर 2011 मूल्य 25 ₹
Date of Posting: 05-11-2011
डाक पंजीयन संख्या : नागौर/016/09–11
भारत सरकार पंजीयन संख्या : 35209/80

अध्यात्म योग का मासिक पत्र

प्रेक्षाध्यान

ध्यान और विरति

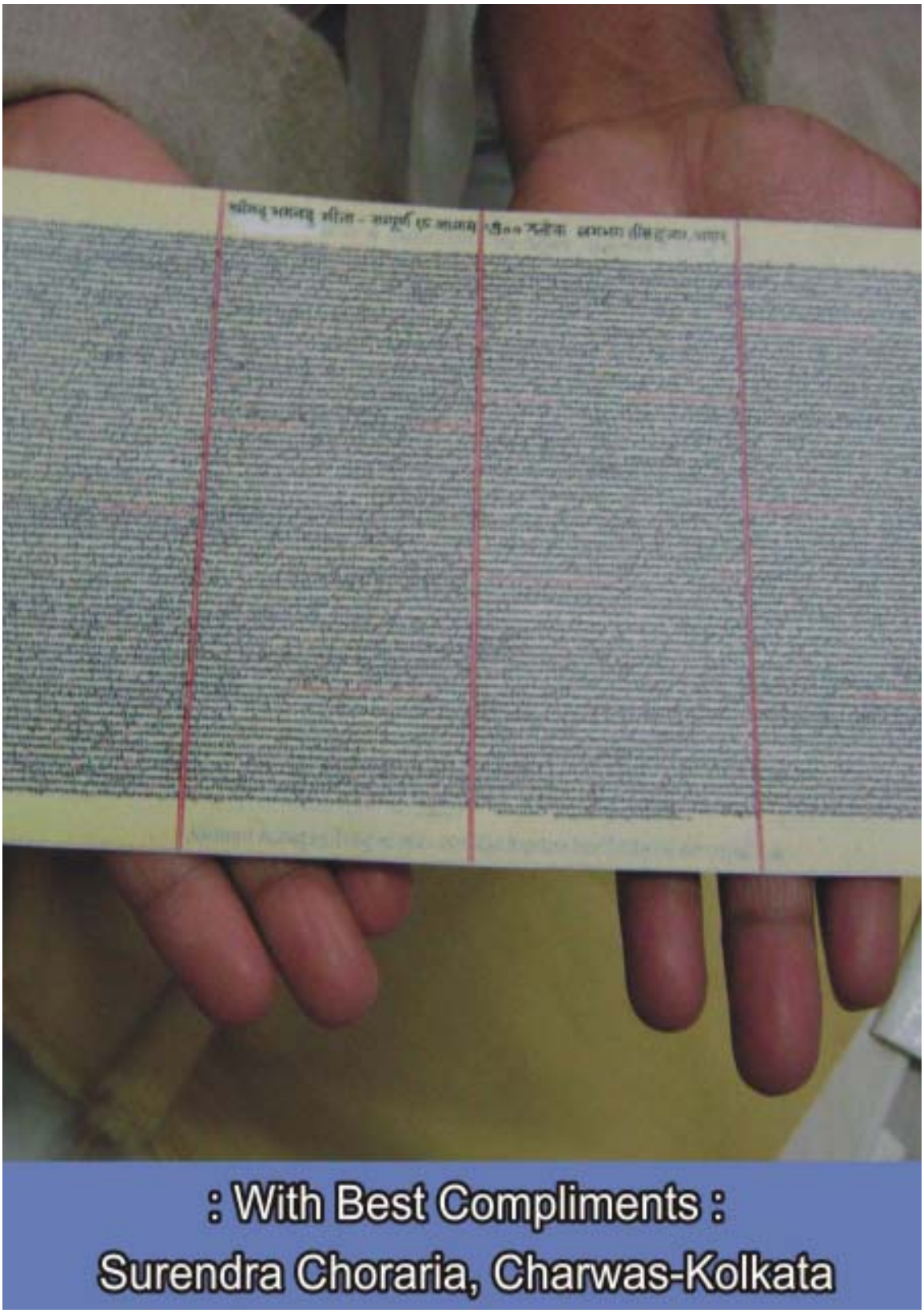

: With Best Compliments :
Surendra Choraria, Charwas-Kolkata

अध्यात्म योग का मासिक पत्र

प्रेक्षाध्यान

वर्ष : 32 नवम्बर - 2011 अंक-11

सम्पादक
डॉ. समणी सत्यप्रज्ञा

सह-संपादक
डॉ. वन्दना कुण्डलिया

साज-सज्जा
अनूप खोजा

कार्यालय

प्रेक्षा फाउण्डेशन
तुलसी अध्यात्म नीडम्
जैन विश्व भारती,
लाडनूं - 341306, राजस्थान
फोन : 01581-222119

ईमेल :
foundation@preksha.com

सदस्यता शुल्क

एक अंक	:	25 रु.
एक वर्ष	:	300 रु.
त्रैवार्षिक	:	750 रु.
दस वर्ष	:	2500 रु.
विदेश के लिए वार्षिक	:	2500 रु.

''प्रेक्षाध्यान'' में प्रकाशित सामग्री में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। ''प्रेक्षाध्यान'' भी उनसे सहमत हों, यह आवश्यक नहीं। - सम्पादक

इस अंक में

ध्यान और विरति	आचार्य तुलसी	06
रास्ता अनंत नहीं	आचार्य महाप्रज्ञ	09
कर्मण्ये वाऽधिकारस्ते	आचार्य महाश्रमण	13
लोभात् द्रुद् दौर्बल्यं	साध्वी डॉ. श्रुतयशा	17
अपरिग्रह : निश्चय और व्यवहार	समणी चारित्रप्रज्ञा	20
अपरिग्रह चेतना 'दया' के आलोक में	भंवरलाल जीरावला	21
Why should I Believe in infinite power A Docor's Humble Submission	Dr. Ghanshyam Jain, Titilagarh	27
'Aparigraha' A Principle of Environmental Ethics	Samani Rohini Pragya	29

स्तम्भ

संशय	महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा	16
परिष्कार की राह		22
एक शब्द : एक चित्र		23
छोटी सी पहल		32
साक्षात्कार	एस. के. जैन	33
सम्पादकीय		04
प्रेक्षा तत्त्व		05
बोध कथा		19
जिज्ञासा : समाधान		30
प्रयोगधर्मा महाप्रज्ञ	श्रीमती स्नेहलता धारीवाल समणी स्वर्ण प्रज्ञा	36
अनुभव के स्वर		39
बढ़ते चरण		43

लगन

लगन जीवन का पर्याय है। लगन की दिशा जब बहिर्मुखी होती है, शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श की अनुकूलता आकर्षण का विषय हो जाती है। लगन की दिशा जब अन्तर्मुखी होती है, आकर्षण का विषय बदल जाता है। भीतर का सौंदर्य, भीतर का आनन्द, भीतर का परमात्मा आकर्षण का विषय बन जाता है। बाहर के विषय तब बाहर ही रह जाते हैं, भीतर को छू तक नहीं पाते।

मीरा को ऐसी ही कोई लगन लगी कि-महलों में पली, बनके जोगन चली। राजा भर्तृहरि को योग और वैराग्य के किसी ऐसे आकर्षण ने खींचा कि शरीर पर भभूति रम गई और यह कहते हुए वे राजमहल से चल दिए कि-'आत्मा सदा सुहागन है, इसके सारे श्रृंगार शाश्वत हैं।' बुद्ध और महावीर को भी ऐसे ही किसी परम के आकर्षण का आह्वान मिला और वे 'अहो सुखं' की धुन के साथ चल दिए परम पथ की ओर।

वस्तुतः विरति या अपरिग्रह का अर्थ ममत्व या मूर्च्छा का विसर्जन है। ध्यान का अर्थ चैतन्य का जागरण है। तात्पर्य में ये दोनों एक हो जाते हैं। चेतना के अनहद आनंद-सागर में रमण करने वाला दिव्य-शब्द, दिव्य-रस आदि के अनमोल मोती प्राप्त करता है। फलतः भीतर से शब्द मुखर हो जाते हैं- 'ओ क्षणभंगुर भव! राम-राम।'

ध्यान-साधना के प्रारंभिक अभ्यास में अपरिग्रह का लक्ष्य परिग्रह के अल्पीकरण से है। शरीर की आसक्ति, कषाय व पदार्थ का अल्पीकरण ध्यान से घटित होता है। अपरिग्रह के ज्ञान या संयम के अनुष्ठान से व्यक्ति की जीवन दिशा परिवर्तित हो जाती है। परार्थ और परमार्थ चेतना को घटित होने का अवसर इस अवस्था में सहज-सुगम हो जाता है। मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में इतिहास साक्षी है-

क्षुधार्त्त रंतिदेव ने दिया करस्थ-थाल भी
तथा दाधीचि ने दिया परार्थ अस्थि-जाल भी
उशीनर क्षितीश ने स्वमांस दान भी किया
सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर-वर्म भी दिया
अनित्य देह के लिए अनादि जीव क्या डरे ?
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।

अहिंसा युक्त अपरिग्रह के परिपालन में लक्ष्य जीवन-रक्षा से अधिक संयम की सुरक्षा व संवर्धन का है। ध्यान से होने वाली विरति एवं आत्मानुभूति के साथ लगन इसी दिशा में प्रवर्धमान होती रहे-इसी शुभभावना के साथ।

- समणी सत्यप्रज्ञा

प्रेक्षा-तत्त्व

अपरिग्रह-अनासक्ति

कसिणं पि जो इमं लोयं पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स।
तेणावि से न संतुस्से इइ दुप्पूरए इमे आया।।

धन धान्य से परिपूर्ण यह समूचा लोक भी यदि किसी एक व्यक्ति को दिया जाए, तब भी वह उससे संतुष्ट नहीं होता। इतना दुष्पूर है यह आत्मा।

जहा लाहो तहा लोहो लाहा लोहो पवड्ढई।
दोमासकयं कज्जं कोडीए वि न निट्ठियं।।

जैसे लाभ होता है, वैसे ही लोभ होता है। लाभ से लोभ बढ़ता है। दो माशा सोने से पूरा होने वाला कार्य करोड़ों से भी पूरा नहीं होता।

पुरोहियं तं ससुयं सदारं सोच्चाभिनिक्खम्म पहाय भोए।
कुडुंबसारं विउलुत्तमं तं रायं अभिक्खं समुवाय देवी।।

पुरोहित अपने पुत्रों और पत्नी के साथ भोगों को छोड़कर प्रव्रजित हो चुका है-यह सुन राजा इषुकार उसके प्रचुर और प्रधान धन-धान्य आदि को राज्य कोष के लिए मांगने लगा।

वंतासी पुरिसो रायं! न सो होइ पसंसिओ।
माहणेण परिच्चत्तं धणं आदाउमिच्छसि।।

तब महारानी कमलावती ने कहा-राजन्! वमन खाने वाले पुरुष की कभी प्रशंसा नहीं होती। आप ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को लेना चाहते हैं। यह क्या है?

सव्वं जगं जइ तुहं सव्वं वावि धणं भवे।
सव्वं पि ते अपज्जत्तं नेव ताणाय तं तव।।

यदि समूचा जगत् तुम्हें मिल जाए अथवा समूचा धन तुम्हारा हो जाए तो भी वह तुम्हारी इच्छा-पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होगा और वह तुम्हें त्राण भी नहीं दे सकेगा।

मरिहिसि रायं! जया तया वा, मणोरमे कामगुणे पहाय।
एक्को हु धम्मो नरदेव! ताणं, न विज्जई अन्नमिहेह किंचि।।

राजन्! इन मनोरम काम-भोगों को छोड़कर जब कभी मरना होगा। हे नरदेव! एक धर्म ही त्राण है। उसके सिवाय कोई दूसरी वस्तु त्राण नहीं दे सकती।

नाहं रमे पक्खिणि पंजरे वा संताणछिन्ना चरिस्सामि मोणं।
अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा परिग्गहारंभनियत्तदोसा।।

जैसे पक्षिणी पिंजरे में आनंद नहीं मानती, वैसे ही मुझे इस बंधन में आनंद नहीं मिल रहा है। मैं स्नेह के जाल को तोड़कर अकिंचन, सरल क्रियावाली, विषयवासना से दूर और परिग्रह एवं हिंसा के दोषों से मुक्त होकर मुनिधर्म का आचरण करूंगी।

ध्यान और विरति

आचार्य तुलसी

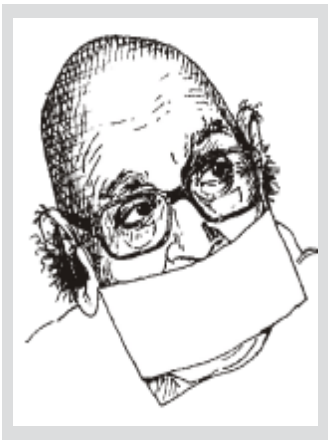

जिस व्यक्ति में आत्माभिमुखता की तीव्रता नहीं है, उसके लिए अरण्य भी गांव जैसा है और जिस व्यक्ति में आत्माभिमुखता की तीव्रता है, उसके लिए गांव भी अरण्य जैसा है। इसी प्रकार आत्माभिमुख व्यक्ति संघ में रहकर भी अकेला रह सकता है। वह अकेले में रहकर भी वैचारिक अकेलेपन का अनुभव नहीं कर पाता।

आज हम जिस युग में जी रहे हैं, उस युग में प्रत्येक तथ्य की बारीकी से छानबीन की जाती है। किसी व्यक्ति में कोई बुरी आदत हो जाती है तो हम उसे कर्मोदय कहते हैं। वैज्ञानिक उसकी नाड़ी परीक्षण करते हैं। उनके अनुसार नसों की खराबी से व्यक्ति में बुरी बादतें आती हैं। उन नसों को काट दिया जाता है तो आदत बदल जाती है। तामसिक भोजन को वे उत्तेजतना का निमित्त बताते हैं। इसी प्रकार अन्य तथ्यों की खोज कर वे बुराई का निवारण करते हैं।

भगवान् ने कहा है-'उड्ढं सोया अहे सोया तिरियं सोया वियाहिया' ऊपर, नीचे और बीच में सब जगह स्रोत हैं। कुशल वह होता है, जो इनसे बचकर रहे। कोई आदमी भगवान् के दर्शन के लिए चला। बीच में किसी औरत को देखकर वह फिसल गया। उसकी फिसलन का दोषारोपण स्त्री पर किया जाता है। कवि ने कहा-

एक कनक दूजी कामिनी, ए दो मोटी खाड।
राजा रावण बादशाह, पड़-पड़ भांग्या हाड।।

कंचन और कामिनी गढ्ढ़ा है तो आप उसमें क्यों गिरते हैं? गिरने से तो हड्डी-पसली चूर-चूर होगी ही। यदि स्त्री तलवार है तो आप उसे म्यान से निकाल कर गले से क्यों लगाते हैं? वास्तव में स्त्री या पुरुष पतन के हेतु नहीं हैं। पतन होता है व्यक्ति की अपनी वृत्तियों से। परिस्थितियों के अनुकूल फिसल जाना बड़ी बात नहीं है। काजल की कोठारी में रह कर भी बेदाग रहना, यह बड़ी बात है। आज के युग में रहकर कुटिल बन जाना बड़ी बात नहीं है। किन्तु जो युग के साथ चलता हुआ भी उसके असत् प्रभाव से बचा रहता है, वह महान् व्यक्ति है। पौद्गलिक सामग्री की अनुकूलता में जो अपनी वासना पर काबू पा लेता है, वही वास्तव में दांत और आत्मजयी होता है। वह विकारों का विर्सजन कर देता है।

विसर्जन साधना का रहस्य है। जो विसर्जन के महत्त्व को नहीं जानता, वह साधना के मर्म को नहीं जानता। अंहकार और ममकार-ये दोनों साधना के बाधक तत्त्व हैं। साधक की पहली कसौटी है-अहंकार और ममकार से मुक्त होना।

शरीर-व्युत्सर्ग

ममकार का मूल बीज शरीर है। साधना की पहली कक्षा है-शारीरिक ममत्व का विसर्जन। शारीरिक ममत्व को विसर्जित किए बिना शरीर के भीतर अवस्थित चेतन-सत्ता की अनुभूति नहीं हो सकती। दीपशिखा पर जैसे ढक्कन पड़ा है, उसी प्रकार शरीर और उसके सहचारी-मन और प्राण के द्वारा चैतन्य की शिखा ढकी पड़ी है। शरीर की चंचलता और ममत्व का जैसे-जैसे विर्सजन होता है, वैसे-वैसे हमारी उन्मुखता चैतन्य की ओर होती है। ध्यान का लक्ष्य है-चैतन्य की उपस्थिति का सतत अनुभव करना। उसके लिए शरीर की चंचलता और ममत्व, ये दोनों त्याज्य हैं।

ममत्व-विसर्जन की कसौटी असंग्रह है। संग्रह है और ममत्व नहीं है, यह सामान्य स्थिति नहीं है। संग्रह नहीं होने पर ममत्व नहीं होता, यह व्याप्ति भी नहीं है। इन दोनों रेखाओं के मध्य में जो देखा जा सकता है, वह इतना ही है कि ममत्व-विसर्जन के लिए संग्रह का विसर्जन किया जाए और संग्रह-विसर्जन की यथार्थता के लिए ममत्व-विसर्जन का अभ्यास किया जाए। आनन्द उसी स्थिति का नाम है, जो बाह्य के संयोग या वियोग के आधार पर घटित नहीं होती।

गण-व्युत्सर्ग

साधक 'अकेले में रहे या संघ में'-इस प्रश्न का भगवान् महावीर ने अनेकांतिक उतर दिया है। भगवान् ने कहा-साधना गांव में भी हो सकती है और अरण्य में भी हो सकती है और वह गांव में भी नहीं हो सकती है और अरण्य में भी नहीं हो सकती। जिस व्यक्ति में आत्माभिमुखता की तीव्रता नहीं है, उसके लिए अरण्य भी गांव जैसा है और जिस व्यक्ति में आत्माभिमुखता की तीव्रता है, उसके लिए गांव भी अरण्य जैसा है। इसी प्रकार आत्माभिमुख व्यक्ति संघ में रहकर भी अकेला रह सकता है। वह अकेले में रहकर भी वैचारिक अकेलेपन का अनुभव नहीं कर पाता।

तत्त्व-विचार की भूमिका में उक्त चिंतन की यथार्थता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मनुष्य की कठिनाई है कि वह पहले ही चरण में तत्त्व-चिन्तन और व्यवहार की भूमिका में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता। संघीय जीवन में व्यावहारिक कठिनाइयां अनायास ही उभर आती हैं। उसमें विभिन्न रुचियां, संस्कार, चिन्तन और मानदंड होते हैं। वे सामान्य साधना में विक्षेप डालते भी हैं या नहीं भी डालते। किन्तु उसकी विशिष्ट प्रक्रियाओं व प्रयोगों में वे साधक नहीं होते। इसीलिए साधना की विशिष्ट प्रक्रियाओं का अभ्यास करने वाला व्यक्ति संघीय जीवन से मुक्त होकर चलता है।

दूसरों के लिए कुछ करना बहुत बड़ी बात है और केवल अपने लिए करना स्वार्थ है, इस सत्य को अस्वीकृति नहीं दी जा सकती। इस तथ्य पर भी आवरण नहीं डाला जा सकता कि संघमुक्त साधना करने का सम्बन्ध प्रयोजन से नहीं, पद्धति से है। एकान्त में साधना करने वाले का प्रयोजन अपने लिए और दूसरों के लिए, इन दोनों की समष्टि में व्याप्त है। वह केवल स्वार्थ ही नहीं है, किन्तु जैसे एक विद्यार्थी, कवि, लेखक या वैज्ञानिक को अपने कार्य के लिए शान्त-नीरव स्थान की अपेक्षा होती है, वैसे ही आत्मानुभूति की गहराई में पैठने वाले साधक को एकान्त की अपेक्षा होती है। शान्त-सरोवर में कोई ढेला न फेंके इस दृष्टि से उसे अकेला रहना आवश्यक होता है। प्रायोगिक काल में अकेलेपन की उपयोगिता समझ में आती है। सत्य उपलब्ध होने पर संघ या अकेलेपन का कोई भेद नहीं होता।

उपधि और भक्तपान व्युत्सर्ग

पदार्थों का संग्रह और उनका ममत्व-ये दोनों अन्तरानुभूति के विघ्न हैं। पदार्थ स्वतः विघ्न नहीं हैं किन्तु उनका संग्रह लोभ के कारण होता है, इसलिए वह विघ्न हो जाता है। ममत्व के बिना संग्रह होता ही नहीं और जहां ममत्व होता है, वहां अन्तरानुभूति का स्थान बाह्यानुभूति ले लेती है। उस स्थिति में साधक की चेतना मूर्च्छा से बोझिल बन जाती है। मूर्च्छा का विसर्जन अर्थात् संग्रह का विसर्जन। यह विसर्जन की प्रक्रिया आगे बढ़ते-बढ़ते पदार्थों के पूर्ण त्याग तक पहुंच जाती है। भोजन के बिना शरीर का निर्वाह नहीं हो सकता, किन्तु इस प्रक्रिया में उसका भी आंशिक त्याग प्राप्त है और एक बिन्दु आने पर सदा के लिए भोजन का विसर्जन कर दिया जाता है। दैहिक ममत्व का विसर्जन करने के लिए ऐसा करना बहुत आवश्यक है।

ममत्व-विसर्जन हो जाए, फिर संग्रह-विसर्जन की क्या आवश्यकता है? इस चिन्तन का ब्रह्म जितना सुन्दर है, उतना अन्तस् यथार्थ नहीं है। ममत्व-विसर्जन की कसौटी असंग्रह है। संग्रह है और ममत्व नहीं है, यह सामान्य स्थिति नहीं है। संग्रह नहीं होने पर ममत्व नहीं होता, यह व्याप्ति भी नहीं है। इन दोनों रेखाओं के मध्य में जो देखा जा सकता है, वह इतना ही है कि ममत्व-विसर्जन के लिए संग्रह का विसर्जन किया जाए और संग्रह-विसर्जन की यथार्थता के लिए ममत्व-विसर्जन का अभ्यास किया जाए।

क्या कोई शरीरधारी ऐसा हो सकता है, जो शरीर को धारण करे और उसकी मांग को पूरा न करे ? भोजन शरीर की आवश्यक मांग है। उसे पूरा करना साधक के लिए भी अनिवार्य है। एक ओर शरीर की मांग को पूरा करने का प्रश्न है तो दूसरी ओर उसके ममत्व (देहाध्यास) के विसर्जन का प्रश्न है । शारीरिक ममत्व का विसर्जन करने के लिए यह आवश्यक है कि साधक शरीर की अपेक्षा को पूरा करे किन्तु जितनी अपेक्षा हो, उसे अविकल रूप से पूरा न करे। यह देह और आत्मा के भेदज्ञान की ओर प्रगति होने की व्यावहारिक कसौटी है।

कषाय-व्युत्सर्ग

अनुकूल स्थिति और इष्ट वस्तु का योग होने पर मनुष्य को सुख की अनुभूति होती है। प्रतिकूल परिस्थिति और अनिष्ट का योग होने पर उसे दुःख का अनुभव होता है। साधारण मनुष्य इसी सुख-दुःख के चक्र में परिभ्रमित रहता है। सुख के आगे आनन्द नाम की कोई वस्तु है, यह प्रश्नचिह्न भी उसके मन में नहीं उभरता। प्रतिकूल परिस्थिति और अनिष्ट के योग में भी मनुष्य के आनन्द का प्रवाह अविच्छिन्न रह सकता है, यह कल्पना सामान्यतः नहीं हो सकती। किन्तु आनन्द उसी स्थिति का नाम है, जो बाह्य के संयोग या वियोग के आधार पर घटित नहीं होती।

हर मनुष्य के अन्तस् की गहराई में आनन्द की असीम धारा प्रवाहित होती है किन्तु प्राणिक और मानसिक आवरणों से वह आच्छन्न है। मोह (कषाय) की राख से उसके अस्तित्व की लौ ढ़की हुई है, इसलिए उसका होना, नहीं होने जैसा है। ध्यान से होने वाली विरति आदि के अभ्यास से प्राणिक और मानसिक आवरण का विघटन करना काफी प्रयत्न-साध्य है। आत्मानुभूति की गहराई होने पर प्राणिक और मानसिक आवरण विच्छिन्न हो जाते हैं। आत्मानुभूति की गहराई जब निरन्तर हो जाती है, उस समय मोह की ग्रन्थि भी खुल जाती है और मनुष्य सहज आनन्दानुभूति के रस में परिप्लावित हो जाता है। यह जीवन की सार्थकता है।

जरूरतमंद

प्र संग

बैंजामिन फ्रेंकलिन एक अखबार निकालते थे। एक बार आर्थिक संकट के समय मित्र के पास मदद के लिए गए। 20 डॉलर की मदद मिली। स्थिति में सुधार आया। फ्रेंकलिन मित्र को 20 डॉलर वापस देने गए-मित्र ने लिया नहीं और कहा-किसी जरूरतमंद को दे दो। आगे से आगे जरूरतमंद के पास आज भी वे डॉलर अमेरिका में घूम रहे हैं।

रास्ता अनंत नहीं

आचार्य महाप्रज्ञ

प्रत्येक मनुष्य को अपने आपसे एक प्रश्न करना चाहिए कि मुझे चलाने वाला कौन है? यदि इसका यह उत्तर आया कि मेरी मां चला रही है, मेरा पिता चला रहा है, भाई चला रहा है या पत्नी चला रही है तो यह उत्तर कुछ अंशों में सही हो सकता है, किन्तु पूर्णरूपेण सही नहीं है। देखने में तो यही आता है कि पिता जिस काम के लिए कहता है, मां जिस काम के लिए कहती है, वह नहीं करते और जिस काम के लिए नहीं कहते, वह जरूर करते हैं। फिर कैसे कह सकते हैं कि मैं इनके चलाए चल रहा हूं। अगर माता-पिता, भाई या पत्नी जो कहे, उसका शत-प्रतिशत पालन किया जाए तो यह कहना सही होगा कि वे मुझे चला रहे हैं, अन्यथा उत्तर सही नहीं होगा।

हमें हमारा मन चला रहा है, यह भी नहीं कहा जा सकता। मन की बात भी पूरी तरह से आदमी कहां मानता है? बहुत बार तो मन निष्क्रिय-सा रहता है। बहुत बार हम मन की बात को भी अनसुना कर देते हैं। कहते हैं-आदमी कितना भी बुरा क्यों न हो, बुरा काम करते हुए भी एक बार मन से आवाज जरूर आती है कि ऐसा करना अच्छा नहीं, लेकिन आदमी है कि उस आवाज को अनसुनी कर देता है और मन के विपरीत काम कर लेता है। इसका मतलब है कि मन के कहे में भी आदमी नहीं हैं।

गीता में श्रीकृष्ण से अर्जुन पूछते हैं-आदमी न चाहते हुए भी पाप कार्य कर लेता है, इसका कारण क्या है? यह बात केवल गीता में ही नहीं, धम्मपद, आगम आदि सभी ग्रंथों में मिलती है कि आदमी का उसकी वृत्तियों पर नियंत्रण नहीं है। इच्छा नहीं है, करना नहीं चाहता, फिर भी गलत काम कर लेता है। ऐसे भी लोग हैं जो संकल्पबद्ध होते हैं कि शराब जैसी बुराई को अब गले नहीं लगाऊंगा, लेकिन संकल्प पर दृढ़

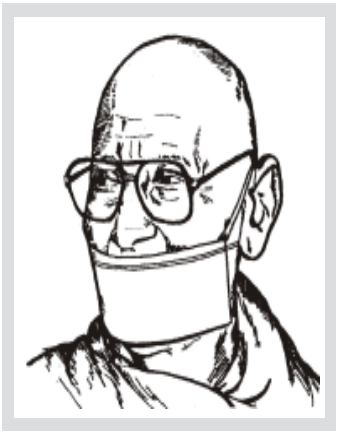

इच्छा आकाश की तरह अनंत है। उसे कोई पूरा कर सके, संभव नहीं है। इस बिन्दु पर आकर जब मनुष्य को वास्तविकता का पता चलता है तो वह पदार्थ से अपदार्थ की ओर, भोग से त्याग की ओर प्रस्थान करता है। सर्वोच्च बिन्दु पर पहुंच जाने के बाद अन्ततः आदमी को मुड़ना ही पड़ता है। कोई भी रास्ता अनंत नहीं होता। कहीं न कहीं तो वह समाप्त होता ही है और चलने वाले को मुड़ना पड़ता है।

नहीं रह पाते। शाम होते ही कदम अनायास ही ठेके की ओर गतिमान हो जाते हैं।

ऐसे में प्रश्न उठता है कि आदमी को कौन चला रहा है? इसका जो उत्तर अध्यात्म के आचार्यों ने खोजा, वह बहुत ही सटीक उत्तर है। अध्यात्म इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहता है–आदमी को चलाती है अविरति, अतृप्ति, कामना। भीतर में कामना का भाव है, जो आदमी को चला रहा है। यह अतृप्ति और कामना आदमी को कहीं विराम नहीं लेने देती। सामने स्वर्ण शैल (पहाड़) भी खड़ा हो जाए तो भी उसे कम लगता है। यह भीतर का तनाव है, जो आदमी को भटकाता और दौड़ाता रहता है। तनाव केवल मस्तिष्क का ही नहीं होता, स्नायविक ही नहीं होता, इनसे अलग भीतर में एक चैतसिक तनाव भी है। मानसिक तनाव को तो आदमी झेल भी लेता है, लेकिन यह चैतसिक तनाव आदमी से कुछ न कुछ करवाए बिना नहीं रहता। जब तक इस चैतसिक तनाव का सही उपचार नहीं किया जाता, आदमी जानबूझ कर गलती और अपराध करता रहेगा। प्रश्न है–उसे बदला कैसे जाए?

आजीविका शुद्धि का प्रश्न कोई नया नहीं है। आदमी आजीविका के लिए जो भी चीज या वस्तु अर्जित करे, उसे न्यायपूर्ण तरीके से करे, अन्यायपूर्ण तरीके से नहीं। इस बारे में बहुत उपदेश दिए गए, बहुत प्रवचन किए गए, बहुत समझाया गया, बहुत संबोध दिया गया, फिर भी आदमी अन्याय का सहारा लेता है। इसका कारण सिर्फ यही है कि भीतर में कामना, वासना या आकांक्षा इतनी प्रबल है कि वह हर क्षण आदमी को कुछ न कुछ प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती रहती है। कितना ही इकट्ठा करते चले जाओ, 'बस अब और नहीं' कहने का नाम नहीं लेती। जैन वाङ्मय में एक कथा आती है–

काष्ठखंडों को जला कर उनसे कोयला बनाने का काम करने वाले एक मजूदर को प्यास लगी। तपती धूप में काम करने वाले श्रमिकों का बड़ा कठोर जीवन होता है सड़क निर्माण–कार्य में लगे श्रमिक भरी दोपहरी में आग की भट्ठी में तारकोल पिघलाते हैं। शरीर को झुलसा देने वाली गर्मी में कोयला बनाने वाले उस श्रमिक को प्यास लगी तो पास में उपलब्ध थोड़ा–सा जल पी लिया। लेकिन उस थोड़े से जल से उसकी प्यास क्या बुझती? बस, एक क्षण भर की राहत उसने महसूस की और निकट ही एक झाड़ी के किनारे लेट कर थकान मिटानी चाही। शीघ्र ही उसे नींद ने आ घेरा। नींद आई तो सपना भी शुरू हो गया। प्यास तो उसकी बुझी नहीं थी, इसलिए सपने में भी उसने सूख रहे कंठ को जल से तृप्त करने का प्रयास शुरू कर दिया। नींद में आ रहे सपने में उसे निकट ही तालाब दिखाई दिया तो उसने तालाब का सारा जल पी लिया। आश्चर्य! प्यास अभी भी बुझी नहीं, बल्कि कुछ और बढ़ गई।

तभी उसने पास में बहती हुई नदी देखी। वह नदी के किनारे गया और नदी का सारा जल उसने पी लिया। लेकिन प्यास फिर भी यथावत्। मजदूर के स्वप्न में दृश्य आगे से आगे बदलने लगा। प्यास से अधीर उस श्रमिक ने देखा–सामने लहराता हुआ समुद्र है। उसने चुल्लू से ताबड़तोड़ पानी पीना शुरू किया और देखते ही देखते सारा समुद्र रिक्त हो गया। लेकिन प्यास ज्यों की त्यों। दृश्य बदला और उसने देखा सामने एक कुआं है। जल्दी से कुएं के पास गया और झांक कर देखा तो पानी नजर आया। लेकिन कुएं से पानी निकालने का कोई साधन नहीं। बुद्धि दौड़ाई तो यह देखकर उसे राहत मिली कि पास में ही घास के कुछ पूले पड़े हैं। उसने उसी घास की रस्सी बनाई और उसी में एक पूले को बांध कर कुएं में लटकाया। पूले को पानी से तर कर उसने उसे ऊपर खींचा और उससे टपक रही पानी की बून्दों को चाटकर वह अपनी प्यास बुझाने का प्रयास करने लगा।

स्पष्ट है कि सपना देख रहे उस प्यासे आदमी की प्यास बुझाने की वह असफल कोशिश नहीं हैं। यह आदमी और उसकी आकांक्षा की हकीकत है। जिसकी प्यास पोखर, नदी और समुद्र पीकर नहीं बुझी,वह पूले से टपकती कुछ बून्दों से बुझ जाएगी क्या? कभी नहीं बुझेगी। लेकिन आदमी है कि इस

सत्य से अनजान या जानते हुए भी इस तरह की नाकामयाब कोशिश कर रहा है।

अतृप्ति अनंत है, असीम है। पदार्थ हैं सीमित और कामना है असीम। ऐसी स्थिति में तृप्ति कैसे हो सकती है? सबकी चाहत और कामना पूरी कैसे हो सकती है? संभव नहीं है। एक रूपये की चाहत सौ, हजार, लाख, करोड़, अरब, खरब तक पहुंचा देने के बाद भी रुकेगी नहीं। व्यक्ति के भीतर सम्राट सिकन्दर की तरह सद्बुद्धि आ जाए तो आकांक्षा पर लगाम लग जाए, अन्यथा शरीर में जब तक सांस है, यह अतृप्ति भी रहेगी। आकांक्षा पर लगाम भी नहीं लगेगी।

महाभारत में राजा ययाति की कथा आती है। भोग-विलास से अतृप्त उस विलासी राजा ने वृद्धावस्था आने पर अपने पुत्रों से उनका यौवन मांगा था। सभी पुत्र इन्कार कर गए थे, किन्तु सबसे छोटे पुत्र ने पिता को अपना यौवन प्रदान कर दिया था। अपने बेटे की आयु भोगकर भी राजा ययाति को तृप्ति नहीं मिली थी और उन्होंने अपने उस कनिष्ठ पुत्र को अपना संपूर्ण पुण्य देकर अपना अनुभव बताते हुए जीवन की वास्तविकता का बोध कराया था। शास्त्रों में और भी न जाने कितने ऐसे उद्धरण मिलते हैं, जिनमें यह सत्य ध्वनित होता है कि कामनाओं का कोई अंत नहीं है। इनकी पूर्ति करने की बजाय कोई ऐसा उपाय किया जाए, जिससे ये और न बढ़ें।

पारिस्थितिकी विज्ञान की एक शाखा सूत्र है-सीमाकरण।हर पदार्थ की एक सीमा है। वह असीम नहीं है। इसलिए असीम और ससीम के बीच में सामंजस्य करना पड़ेगा। आज पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या विकराल रूप क्यों ले रही है ? उपभोग की समस्या को सुलझाने के लिए अंधाधुंध उत्पादन ने बहुत बड़ी समस्या पैदा कर दी है। मिलों और फैक्ट्रियों के कचरे और जहरीले रसायनयुक्त पानी का रुख नदियों की ओर कर दिया जिससे नदियां गन्दे नालों में परिवर्तित हो गईं। अब उन्हें स्वच्छ रखने के उपाय खोजे जा रहे हैं। क्या गजब की नीति है सरकार की। एक समस्या को पैदा कर उसके समाधान का जो उपाय खोजा जाता है, वह उपाय स्वयं दस समस्याओं को जन्म देने वाला होता है।

उतराध्ययन सूत्र में भगवान महावीर का वचन है- इच्छा उ ओगाससमा अणंतिया। इच्छा आकाश की तरह अनंत है। उसे कोई पूरा कर सके, संभव नहीं है। इस बिन्दु पर आकर जब मनुष्य को वास्तविकता का पता चलता है तो वह पदार्थ से अपदार्थ की ओर, भोग से त्याग की ओर प्रस्थान करता है।

आगम साहित्य में कपिल नाम के एक गरीब ब्राह्मण की कथा आती है। वह अतिशय गरीब था। भिक्षाटन के सहारे आजीविका चलती थी पति-पत्नी की। उसके सामने पहाड़ जैसी कठिनाई तब आई, जब पत्नी गर्भवती हुई। दो प्राणियों का गुजारा भी मुश्किल से हो रहा था। पत्नी का गर्भवती होना 'दूबले को दो असाढ' वाली बात हो गई। ब्राह्मण चिंता में पड़ गया। आखिर पत्नी ने ही एक उपाय सुझाया-हमारे राज्य के राजा का नियम है कि प्रतिदिन भोर होते ही जो सबसे पहले उसके सामने आता है,राजा उसे दो तोला सोना देता है। क्यों न तुम सवेरे सबसे पहले राजा से मिलो। ब्राह्मण को बात अच्छी लगी। उसने निश्चय कर लिया कि वह राजा से प्रातःकाल सबसे पहले मिलेगा।

रात को गहरी नींद आ गई तो योजना सफल नहीं हो पाएगी, ऐसा सोचकर ब्राह्मण ने निश्चय किया कि रात को सोऊंगा ही नहीं। सारी रात राजमहल के इर्द-गिर्द चक्कर काटने में गुजार दूंगा और उसने वैसा ही किया। रात्रि का पहला प्रहर शुरू हुआ

तृप्ति देने की सामर्थ्य केवल त्याग में है। जिस दिन आदमी पदार्थ की प्रकृति को निकटता से देख लेगा, पदार्थ की परिणति को देख लेगा, उसके स्वभाव और सीमा को देख लेगा, उसे समझ लेगा, उस दिन उसके भीतर निश्चित रूप से ऐसी चेतना जागेगी जो, उसके जीवन को पूरी तरह से मोड़ देगी।

और वह राजमहल के पास पहुंच गया। मन में दो तोला सोना पाने के सपने संजोए वह राजमहल के आसपास चक्कर काटने लगा। प्रतीक्षा की घड़ियां भी मुश्किल से कटती हैं। रात्रि जागरण कर रहे उस ब्राह्मण के चेहरे पर बैचेनी स्पष्ट रूप से उभर आई। तभी वह राजमहल के सुरक्षाकर्मियो की नजर में आ गया। प्रहरियों ने उसे चोर समझ कर गिरफ्तार कर लिया। प्रातः उसे राजा के समक्ष पेश किया गया। रात में राजमहल के आसपास घूमने का उद्देश्य चोरी के सिवाय और क्या हो सकता था, फिर भी बचाव का पूरा अवसर देते हुए उससे रात में घूमने का कारण पूछा गया। ब्राह्मण ने कहा–'महाराज! मैं चोर नहीं हूं। मुसीबत का मारा एक गरीब ब्राह्मण हूं। प्रतिदिन प्रातःकाल सबसे पहले मिलने वाले को आप दो तोला सोना देते हैं, इसलिए गरीबी निवारण के लिए मैं सबसे पहले आप से मिलना चाहता था। अवसर से चूक न जाऊं, इसलिए मैं रात्रि जागरण करता हुआ प्रभात की प्रतीक्षा में राजमहल के पास घूम रहा था।'

ब्राह्मण ने वस्तुस्थिति राजा के समक्ष रख दी। राजा को उसकी बात में सच्चाई लगी। उसने गरीब ब्राह्मण को दो तोला सोना देने का निश्चय किया, तभी राजा के मन में आया कि मात्र दो तोला स्वर्ण से क्या होगा? ऐसा विचार कर उसने कहा–'विप्र ! क्या दो तोला सोना तुम्हारे लिए पर्याप्त होगा ? तुम कुछ और क्यों नहीं मांग लेते ?'

मुश्किल में फंसने से किसी तरह बचे उस ब्राह्मण ने कहा–'नहीं, महाराज ! मुझे और कुछ नहीं चाहिए।' राजा ने कहा–'मैं तुम्हें एक घंटे का समय देता हूं, तुम अच्छी तरह सोच–विचार लो। सचमुच गरीब आदमी हो, धन की तुम्हें जरूरत है। जो मांगोगे, मैं तुम्हें दूंगा।'

राजा से इतना बड़ा आश्वासन पाने के बाद गरीब ब्राह्मण की दबी इच्छाएं उभार लेने लगीं। अब वे दो तोला सोने पर स्थिर नहीं रह गई। उससे आगे बढकर किलो, दस किलो और चालीस किलो तक पहुंच गई। लेकिन चालीस किलो सोना भी उसे काफी नहीं लगा तत्क्षण विचार आया कि इतने से क्या होगा ? क्यों न राजा का पूरा राज्य ही मांग लूं। राजा ने सबके बीच घोषणा की है जो कि मांगोगे, वह दूंगा। राज्य मांगूगा तो भी इन्कार नहीं करेगा, लेकिन तभी उस ब्राह्मण की विचारधारा ने पलटा खाया। सर्वोच्च बिन्दु पर पहुंच जाने के बाद अन्ततः आदमी को मुड़ना ही पड़ता है। कोई भी रास्ता अनंत नहीं होता। कहीं न कहीं तो वह समाप्त होता ही है और चलने वाले को मुड़ना पड़ता है।

सोच की दिशा मुड़ी तो राजा का राज्य पाने की आकांक्षा तिरोहित हो गई। राज्य मिल भी गया तो क्या उसे अनंत काल तक भोग सकूंगा ? दाता के साथ इतना बड़ा छल करने की बात मेरे मन में आई ही क्यों ? धिक्कार है मुझे। इतनी निकृष्ट सोच ! पतन की भी कोई सीमा होती है। जीवन भर इसका प्रायश्चित करू तो भी कम है'। ऐसा सोच कर वह गरीब ब्राह्मण राजा के समक्ष उपस्थित हुआ और हाथ जोड़कर बोला। 'मेंने अच्छी तरह विचार कर लिया महाराज ! मुझे अब कुछ नहीं चाहिए। जीवन की वास्तविकता अब मेरी समझ में आ गई। इस एक घंटे में मैं कहां से शुरू होकर कहां तक पहुंच गया। अब मैं वह मार्ग लेना चाहता हूं, जो आदमी को सही गंतव्य तक पहुंचाता है। मैं गृहस्थी से ही मुक्त होना चाहता हूं, संन्यास ही अब मेरे लिए श्रेयस्कर है।' अन्ततः उस कपिल ब्राह्मण ने संन्यास ले लिया।

त्याग का स्पर्श मात्र ही व्यक्ति को इतना धनवान बना देता है कि उसे कुछ पाने की लालसा शेष नहीं रह जाती। अन्यथा चाह कभी किसी की पूरी नहीं होती।

भोग और त्याग–ये दोनों ही शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। दोनों ही आदमी को कहां से कहां पहुंचा देते हैं। भोग से कभी तृप्ति नहीं मिलती। तृप्ति देने की सामर्थ्य केवल त्याग में है। जिस दिन आदमी पदार्थ की प्रकृति को निकटता से देख लेगा, पदार्थ की परिणति को देख लेगा, उसके स्वभाव और सीमा को देख लेगा, उसे समझ लेगा, उस दिन उसके भीतर निश्चित रूप से ऐसी चेतना जागेगी जो, उसके जीवन को पूरी तरह से मोड़ देगी।

प्राणी में अनेक प्रकार के भाव होते हैं। उसमें लोभ होता है तो संतोष भी होता है। उसमें परिग्रह की चेतना होती है तो त्याग, संयम की चेतना भी जाग जाती है। आसक्ति होती है तो अनासक्ति का भाव भी जाग जाता है। संत के लिए कहा कि वे अहिंसा के पुजारी होते हैं।

तन कर मन कर वचन कर, देत न काहू को दुक्ख।
तुलसी पातक झरत है, देखत बांको मुक्ख ।।

जो अपने शरीर से, वाणी से और मन से किसी को दुःख नहीं देते, किसी की हिंसा नहीं करते, ऐसे संतों का तो दर्शन ही पापनाशयक है। दया आदमी के जीवन का एक गुण होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया–

निराशीर्यतचित्रात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ।।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो आदमी आशा, लालसा से रहित हो जाए, अपने चित्त और आत्मा पर नियंत्रण कर ले, सर्व परिग्रह को त्याग दे, वह साधक शरीर से काम करते हुए भी पापों का बंधन नहीं करता। अगर जीवन में संयम आ गया तो फिर शारीरिक प्रवृति कर्मबन्ध का हेतु नहीं बनती। संयम और दया की चेतना एक संत में तो होनी ही चाहिए; जन साधारण में भी इनका विकास होना चाहिए। एक गांव में एक बार भागवत की आयोजना की गई। आयोजक एक धनवान सेठ था। कथावाचक ने एक सप्ताह तक बड़े अच्छे ढंग से भागवत कथा का वाचन किया। अन्तिम दिन सेठ एक सोने की चौकी लेकर आया और बोला–कथावाचकजी! आपने बड़ा सुन्दर आयोजन किया, लोगों को बड़ा लाभ मिला। मैं आपको सोने की चौकी दक्षिणा में दे रहा हूं। देने के बाद सेठ का अहंकार भी बोला। सेठ ने कहा–कथावाचकजी! आज तक आपने कितनी बार कथाएं की होगी परन्तु मेरे जेसा कोई दानी आपको आज तक मिला क्या? कथावाचक भी साधक था। उसने सोचा कि इसमें तो अंहकार का नाग फुफकार रहा है। कथावाचक के पास कुछ रुपये थे। वह तो गृहस्थ संन्यासी था। उसने दो रुपए चौकी पर रखे और कहा–सेठ साहब! इन दो रुपयों के साथ आपकी चौकी वापस रखता हूं। फिर बोला–आपको इतना बड़ा कोई त्यागी मिला आज तक! जिसने दो रुपये के साथ चौकी वापस लौटाई हो? सेठ का अहंकार चूर–चूर हो गया।

प्राचीन साहित्य में कहा गया कि साधु को त्यागी होना चाहिए। जो कांता और कंचन अर्थात् स्त्री और पैसे का त्याग कर दे, वह संत होता है। संत,परमात्मा का दूसरा रूप होता है। परमात्मा का प्रतिनिधि होता है। त्याग और संयम की चेतना, अलोभता की चेतना का विकास होना चाहिए। त्यागी व्यक्ति शरीर से कर्म करते हुए भी तामस कर्मों के बंधन से मुक्त रहता है।

गीता में शरीरधारी को कर्म करते हुए भी पापकर्म बंधन से दूर बताया गया है। उत्तराध्ययन में बन्धन से मुक्ति का हेतु वीतरागता को बताया गया है। वीतरागता का तात्पर्य है- राग-द्वेष से मुक्त चेतना। यह संयम की साधना है। निर्लोभता, अकषायता, वीतराग चेतना के लक्षण हैं। जो निर्लोभता की साधना करता है, अकषायचेत्ता होता है, वह साधक पापकर्म का बंध ही नहीं करता। जैन सिद्धान्त है कि वीतराग चलता है। चलते समय उसके पैरों के नीचे आकर कोई प्राणी मर भी जाए तो वीतराग के पापकर्म का बंधन नहीं होता। इसी बात को गीता में शैली परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया गया है। वहां कहा गया है कि जो आदमी आशा, लालसा से रहित है, परिग्रह मुक्त है और आत्मनियंत्रित हैं, वह कर्म करते हुए भी पापकर्म का बंधन नहीं करता।

बन्धन से मुक्ति का हेतु वीतरागता को बताया गया है। वीतरागता का तात्पर्य है- राग-द्वेष से मुक्त चेतना। यह संयम की साधना है। निर्लोभता, अकषायता, वीतराग चेतना के लक्षण हैं। जो निर्लोभता की साधना करता है, अकषायचेत्ता होता है, वह साधक पापकर्म का बंध ही नहीं करता।

आदमी जीवन जीता है। वह जीने के लिए प्रवृत्ति करता है। शरीरधारी व्यक्ति प्रवृत्ति-मुक्त नहीं हो सकता। प्रवृत्ति के साथ अनासक्ति को जोड़ दें तो वह प्रवृत्ति पापकर्म के बन्धन से बहुलतया या सम्पूर्णतया आदमी को बचा सकती है। पापकर्म के बंधन का मुख्य संबध आसक्ति के साथ होता है। इस संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता के निम्न श्लोक पर मनन करना चाहिए। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं- **यज्ञार्थात्कर्मणाऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।**
तदर्थं कर्म कौन्तेय! मुक्तसङ्गः समाचर।।

जो कर्त्तव्य या करणीय कार्य हैं, उनके सिवाय यानी कर्त्तव्यभाव के सिवाय आसक्ति के साथ जो कर्म किया जाता है, वह कर्म बन्धन करने वाला होता है। प्रवृत्ति और उसमें होने वाला आसक्ति का भाव मनुष्य को बंधन की ओर ले जाता है। आदमी प्रवृत्ति पर ध्यान दे कि मैं अनावश्यक प्रवृत्ति करता हूं या आवश्यक कार्य करता हूं। आवश्यक कार्य करूं, उसमें भी मेरे मन में आसक्ति का भाव है या नहीं? व्यक्ति इस आसक्ति से बचने का प्रयास करे तो वह कर्म करते हुए भी काफी बन्धन मुक्त रह सकता है और कर्म का बंधन होगा भी तो हल्का होगा, विशेष कष्ट पैदा करने वाला नहीं होगा। सम्यक् दृष्टि व्यक्ति की यह खास बात होती है कि वह क्रिया करता हुआ भी, संसार में रहता हुआ भी कमल की भांति निर्लेप रह सकता है।

जैन वाङ्मय में भी एक सीमा तक कर्म को अपेक्षित माना गया है और भगवद्गीता में भी कहा गया कि जनक आदि जो राजा या विशेष लोग हुए हैं, उन्होंने भी कर्मयोग की साधना की है और वे भी कर्म करते-करते सिद्धि को प्राप्त हो गए। लोक संग्रह भी आदमी के लिए करणीय होता है। गीता में लोक संग्रह शब्द का प्रयोग मिलता है। लोक संग्रह का अर्थ किया गया है-लोक मर्यादा सुरक्षित रखने के लिए लोगों को असत् से विमुख करना और सत् के सम्मुख करना। निःस्वार्थ भाव से कर्म करना, यह लोक संग्रह है। लोगों का उद्धार करना, निःस्वार्थ भाव से कर्म करना, यह लोक संग्रह है। जन कल्याण करने से आत्म कल्याण भी होता है। प्रेक्षाध्यान का प्रयोग कराने वाले साधक या प्रशिक्षक लोक संग्रह के लिए, जनकल्याण के लिए प्रयोग करवाते हैं। हम लोग धर्मोपदेश, व्याख्यान आदि लोक संग्रह के लिए करते हैं। लोगों को भी कुछ मिल जाए। हमारे पास जो यत्किंचित ज्ञान हैं, हम उसे लोगों को बता सकें। हमारी बातें सुनने से लोगों को शांति मिल सकती है और कम से कम आधा घण्टा या एक घण्टा जितनी देर सुनेंगे, उतनी देर तो अच्छे भावों में रह सकेंगे। यदि कोई बात दिमाग में बैठ गई तो उसका आचरण भी हो सकता है। गुरुदेव तुलसी ने कितनी यात्राएं की। कहां दक्षिण भारत, कहां कन्याकुमारी, कहां पंजाब, कहां कोलकाता, कहां दिल्ली, कहां राजस्थान, पैरों से चलकर कितने घूमे! इतना परिश्रम लोक संग्रह के लिए किया। कई दशक बीत गए पर लोग आज भी याद करते हैं कि आचार्य

तुलसी आए थे। वे अणुव्रत की बात कहा करते थे। उस समय अनेक लोगों ने अणुव्रत को समझा और स्वीकार भी किया। इस प्रकार यात्रा करने से भी लोक संग्रह होता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ भी गुरुदेव तुलसी के साथ बहुत घूमे और गुरुदेव तुलसी के बाद भी उन्होंने अहिंसा यात्रा की। अनेक लोगों को अहिंसा को समझने का और उसे स्वीकार करने का मौका मिला। हमारे अनेक साधु-साध्वियां यात्राएं करते हैं। यात्राओं से जन-सम्पर्क होता है और लोगों को धर्म श्रवण करने का अवसर भी मिलता है।

कामनामुक्त होकर कर्म करना, दूसरों की भलाई के लिए, कल्याण के लिए कर्म करना कर्म, योग हो जाता है और लोक संग्रह की बात भी हो जाती है। जहां कामना आ गई, वहां कर्मयोग में कमी आ गई। कर्म के साथ आसक्ति न रहे। परोपकार की भावना रहे, निष्कामना रहे, वह कर्म आत्मा को निर्मल बनाने में सहयोगी बन जाता है। साधु के लिए कहा गया कि कहीं प्रतिबद्ध मत बनो। अमुक गांव में ही रहना, अमुक नगर में ही रहना, ऐसा मोह मत करो। घूमते रहो। एक जगह जम करके रह गए और वहां आसक्ति हो गई तो साधना में बाधा आ जाएगी। साधुओं का विहार क्रम चलता है। हम यदा कदा कहा करते हैं-

साधु तो रमता भला, दाग न लागै कोय।
पाणी तो बहता भला, पड्या गंदिला होय।।

जमे हुए पानी की तरह साधु आसक्ति के कारण शुद्ध नहीं रह जाता। साधुओं के लिए विहार करना प्रशस्त है ताकि कहीं मोह न हो, आसक्ति न हो। आसक्ति से यहां भी समस्या पैदा हो सकती है और आदमी की आत्मा का उत्थान होने में भी अवरोध पैदा हो जाता है। इसलिए जैन आगमों ने भी कहा और गीता ने भी कहा कि आसक्ति का त्याग करो और कर्मयोगी बनो। प्रवृत्ति अच्छी करो, निष्काम भाव रखो। फलाशंसा मत रखो कि मैं यह करूं तो मुझे वापस यह मिल जाए। शुद्ध सेवा भावना से काम करो, वापस बदले में कुछ पाने की भावना मत रखो। कुछ पाने की भावना करने का मतलब है- सेवा का महत्त्व कम कर देना। आत्मा की दृष्टि से सेवा का जो लाभ मिल सकता है, उस लाभ में कमी आ जाएगी। आगम में एक बात आई कि भगवान महावीर के समय साधु-साध्वियों ने निदान कर लिया। राजा श्रेणिक और उसकी रानी चेलना को देखा तो साधुओं ने सोचा कि कितनी सुन्दर रानी है। अगर हमारी तपस्या का, हमारी साधना का कोई फल हो तो हमें भी अगले भव में ऐसी रानी मिल जाए। साध्वियों ने सोच लिया कि अगर हमारी तपस्या, साधना और ब्रह्मचर्य की आराधना का कोई फल हो तो हमें अगले जन्म में श्रेणिक जैसा पुरुष पति के रूप में मिल जाए। कामना करना, निदान करना तपस्या या साधना को बेचना होता है। उनको संबोध दिया गया कि निदान करने से तुम्हारी साधना नष्ट हो जाएगी। आखिर उन्होंने अपने कृत का प्रायश्चित्त कर लिया। पंडित जवाहर लाल नेहरू का एक प्रसंग है। उनके पिता मोतीलालजी नेहरू एक बार घूमने के लिए कुछ व्यक्तियों के साथ गए। एक बाबा साधना कर रहे थे। उन्होंने कहा-बाबा! मेरे कोई पुत्र नहीं है। आप मुझे पुत्र का वरदान दो।

बाबा-भाई! मैं साधना करता हूं। तुमको पुत्र का वरदान देकर क्या मैं अपनी साधना को बेच दूं। ऐसा काम मैं नहीं करना चाहता। मोतीलालजी ने बहुत आग्रह किया कि मुझे वरदान दीजिए, जिससे मेरे संतान हो जाए, बेटा हो जाए।

बाबा-तुमको अति आग्रह नहीं करना चाहिए पर तुमने कर लिया, खैर मैं देखता हूं। मोतीलालजी लौट गए। अगले दिन वे वापिस घूमने गए तो देखा वह संन्यासी मृत रूप में पड़ा था। वहां उसकी पार्थिव देह पड़ी थी। कुछ समय बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू का जन्म हो गया। तब ऐसा अनुमान लगा कि उस महात्मा ने कोई ऐसा प्रयोग किया होगा कि वह दिव्यात्मा मोतीलालजी के पुत्र के रूप में पैदा हो गई होगी। साधना के फल की इच्छा हो जाती है, भौतिक फल की इच्छा हो जाती है तो थोड़े में तपस्या बिक जाती है इसलिए कामना नहीं करनी चाहिए, निष्काम रहना चाहिए। निष्काम भाव से सेवा, दूसरों का हित करने से पाप कर्म का बंध नहीं होता। यही इष्ट है।

संशय

- महाश्रमणी साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा

मन में फांस उगी संशय की, थी कोई मनहूस घड़ी ।
सम्बन्धों की हंसती- खिलती, कान्त-शान्त बगिया उजड़ी ।।

कल तक भिन्न-भिन्न देहों में, एक प्राण की धार बही,
खुशी बांटकर भोगी हर पल, मिल-जुलकर हर व्यथा सही ।
जीवन-मरण साथ में होंगे, ऐसा था संकल्प महान,
एक वाकया घटा कि दोनों पैरों से खिस गई मही ।
दगा दे दिया उस स्नेही ने, माना जिसको जीव-जड़ी ।।

कुछ भी कहता एक, अपर को उससे कभी विरक्ति नहीं,
करता कुछ भी बिना कहे, ना न्यून हुई अनुरक्ति कहीं ।
दो पतंग उड़ती थी नभ में एक डोर से बंधी हुई,
एकरूपता थी चिन्तन में, भिन्न कभी अभिव्यक्ति नहीं ।
झटका एक लगा ऐसा, लय सांसों की सहसा उखड़ी ।।

कहां खो गया अनजाने ही, मन में जो उल्लास भरा,
विटपी विश्वासों का सूखा, रहता जो नित हरा-भरा ।
कदम-कदम पर बिछा अंधेरा, मंजिल भटक गई पथ से,
नयन नहीं मिलते दोनों के, बदल गए नभ और धरा।
संशय छोटी-सी चिनगारी, आग फूट की बहुत बड़ी।।

लोभात् हृद् दौर्बल्यं

साध्वी डॉ.श्रुतयशा

जिजीविषा प्राणी का प्राथमिक अभीष्ट है। जीवन महत्वपूर्ण है इसलिए एक स्वर प्रायः अनुगुंजित रहा–'जीवेमः शरदःशतम्।' पर उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है स्वास्थ्य। रुग्ण जीवन जीना कोई नहीं चाहता। रोग से हताश व्यक्ति मृत्यु का वरण करने की इच्छा करता है। इसीलिए अर्हतों से प्रार्थना की गई–

'आरोग्गबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु ।

जीवन का महत्वपूर्ण सुख है– आरोग्य। जीवन दर्शन पर विचार करने वाला कोई भी विचारक स्वास्थ्य के प्रश्न को गौण नहीं कर सकता। भगवान महावीर अध्यात्म पुरुष थे। उनकी दृष्टि आत्मा पर केन्द्रित थी। वचन और प्रवचन का मुख्य विषय था– आत्मा और उसकी बन्धन मुक्ति। अध्यात्म के सूत्र शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य की दृष्टि से किस प्रकार महत्व रखते हैं, इसका एक निदर्शन है–महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र। आचार्य महाप्रज्ञ की यह कृति केवल महावीर वाणी का ही प्रतिनिधित्व नहीं करती, बल्कि स्वयं महाप्रज्ञ के स्वास्थ्य– दर्शन की भी झलक प्रस्तुत करती है। आचार्य महाप्रज्ञ ने इस विषय में दो और ग्रन्थ प्रदान किए हैं–आमन्त्रण आरोग्य को तथा अमृत–पिटक। इन्हीं कृतियों से प्रस्फुटित 'महाप्रज्ञ के स्वास्थ्य दर्शन' की कुछ रेखाओं का आलेखन यहां अभीष्ट है।

पवित्र (वासना मुक्त) भाव जहां व्यक्ति के शरीर में अमृत तुल्य रसायनों का स्राव करते हैं, वहां अपवित्र भाव उससे शरीर को विषैला बना देते हैं। स्वस्थ रहने के लिए केवल पौषण ही कार्यकारी नहीं हो सकता, विजातीय तत्त्वों का रेचन भी आवश्यक है। केवल रेचन से ही आरोग्य नहीं मिलता, वीतरागता पूर्ण प्रेक्षा (दर्शन) भी चाहिए।

मूलस्पर्शी दर्शन

युगप्रधान महाप्रज्ञ के स्वास्थ्य दर्शन की प्रथम विशेषता रही है– उनका मूलस्पर्शी दृष्टिकोण । उनकी दृष्टि शोध परक रही है अतः उन्होंने 'नामूलं लिख्यते किंचित्' को विशेष महत्व दिया। वे बहुश्रुत हैं। उन्होंने जैन आगमों के साथ–साथ प्राचीन जैन जैनेत्तर साहित्य, आयुर्वेद, स्वरशास्त्र, मंत्र विद्या आदि का सांगोपांग अध्ययन किया, मनन किया। फलतः उनके स्वास्थ्य शास्त्र में आगमिक सन्दर्भों का प्राचुर्य हैं।

उन्होंनें विभिन्न जगहों पर आगम, दर्शन और कर्मवाद के सूक्तों, सिद्धान्तों एवं आधार–वाक्यों के द्वारा आधुनिक मानव के समक्ष यह दर्शन प्रस्तुत किया कि स्वास्थ्य का अभिप्राय क्या है ? उसके कौन–कौन से अंग होते हैं? उसका अहम और दोयम आधार क्या है? स्वास्थ्य दर्शन प्रारम्भ होता है–कार्मण शरीर से। सर्वप्रथम प्राणी का इम्युनिटी सिस्टम गड़बड़ाता है और तभी वह रुग्ण बनता है। इम्युनिटी की अस्त–व्यस्तता का हेतु

है–कर्मशरीर से आने वाले असाता वेदनीय के स्पन्दन। वे ही हमारी जीवनी शक्तियों–आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति आदि को अस्त–व्यस्त कर देते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने विभिन्न पर्याप्तियों के संवादी केन्द्र और उनके आरोग्य के उपाय प्रदान कर आधुनिक स्वास्थ्यशास्त्रियों एवं विचारकों के समक्ष एक नया प्रकल्प प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया–नाभि टल जाने का भावार्थ क्या है? आग्नेय प्राण के सन्तुलन का नाभि और शारीरिक स्वास्थ्य से क्या सम्बन्ध हैं? आधुनिक वैज्ञानिकों की थॉयराइड ग्रन्थि और चयापयच की क्रिया का प्राचीन आधार क्या है? रोग और असातावेदनीय का पारस्परिक सम्बन्ध बताकर उन्होंने कर्मवाद को गतिशीलता प्रदान की है।

हमारे चैतन्य की रश्मियां जब तैजस शरीर में से होकर निकलती हैं, तब उस रश्मि समूह से एक इलैक्ट्रो मैग्नेटिक फील्ड का निर्माण होता है। उस आभावलय के रंग, गन्ध, रस और स्पर्श के माध्यम से व्यक्ति के भावों की प्रशस्तता और अप्रशस्तता का ज्ञान किया जा सकता है, रोग का निदान किया जा सकता है। रंग, गन्ध आदि का परिवर्तन कर चिकित्सा की जा सकती है।

तुलनात्मक दर्शन

अध्यात्मवेत्ता, दार्शनिक एवं धार्मिक दृष्टि से विचार करने वाले विचारक या तो 'शरीरं व्याधि मन्दिरं, शरीरं बन्धनं, अशुचिस्थानं' आदि मानते हुए चिकित्सा एवं स्वास्थ्य के प्रश्न को ही गौण कर देते हैं या फिर रोग को कर्मज मानकर उसके प्रति बाह्य निमित्तों की उपेक्षा कर देते हैं। दूसरी ओर वैज्ञानिक, शरीरशास्त्री, चिकित्साविद् आदि विज्ञजन स्वास्थ्य का अधिकांश दायित्व बाह्य परिस्थितियों–कीटाणु, वायरस, मौसम, स्वच्छता, आहारादि की अनुकूलता को मानते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने जिस स्वास्थ्य दर्शन का प्रतिपादन किया, उसमें बाह्य और आन्तरिक, सूक्ष्म और स्थूल, उपादान और निमित्त, सभी हेतुओं का सम्यक् आकलन हुआ है। उन्होंने कहा था–

अन्तर्विशुद्धितो जन्तो, शुद्धिः संपद्यते बहिः।
बाह्यं हि कुरुते दोषं, सर्वमन्तरदोषतः ।।

हमारी भावनात्मक पवित्रता, लेश्या की निर्मलता और चिन्तन की विधायकता पर निर्भर है–हमारा इम्युनिटी सिस्टम, हमारा रेजिस्टेंस पावर। दूसरी ओर हमारा भोजन, भाषण, आचार, व्यवहार सभी हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। यदि एक व्यक्ति सुखी, स्वस्थ एवं प्रसन्न जीवन जीना चाहता है तो उसे संयम का आचरण करना होगा। यदि एक व्यक्ति संयमी है–आहार, श्वास, इन्द्रिय, आसन, भाषा आदि के अतियोग और आयोग से बचता है तो वह स्वस्थ जीवन जी सकेगा।

भावप्रधान दर्शन

शुद्ध आत्मा बीमार नहीं होती। निर्जीव शरीर भी रुग्ण या स्वस्थ नहीं होता। स्वास्थ्य का प्रश्न आत्मा और शरीर के संयोग से उपजा होता है। आत्मा से बीमारी का प्रारम्भ होता है अथवा शरीर से? स्वस्थता का मूल स्रोत क्या है?

चित्त की स्थिरता का अर्थ है–वासनाओं से ऊपर उठना। वासनाएँ कर्म शरीर को साधन बनाती है और आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार स्वास्थ्य के लिए सबसे पहले आवश्यक है–चित्त की स्वस्थता। आत्मा का निकटतम सहचर है–सूक्ष्मतम शरीर–कार्मण शरीर। रोग के स्पन्दन जब कर्मशरीर से सम्पृक्त होकर बाहर की ओर निकलते हैं, तब अशुभ भावों का निर्माण होता है। अशुभ भाव अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों को अप्रशस्त अथवा असन्तुलित करते हैं।

ग्रन्थि स्रावों और नाड़ी तन्त्र की असन्तुलित अवस्था ही स्थूल शरीर में बीमारी के रूप में प्रकट होती है। यदि क्रोध का भाव प्रबल है तो अल्सर, अस्थमा, उच्च रक्तचाप आदि रोग कैसे नहीं होंगे! यदि कुण्ठा की प्रबलता है तो माइग्रेन होना स्वाभाविक है। कहा गया–'लोभात् हृद् दौर्बल्यं' लोभ से हृदय दुर्बल होगा ही। पवित्र (वासना मुक्त) भाव जहां व्यक्ति के शरीर में अमृत तुल्य रसायनों का स्राव करते हैं वहां अपवित्र भाव उससे शरीर को विषैला बना देते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने आधुनिक शरीर शास्त्रियों के समक्ष भावनात्मक स्वास्थ्य का प्रकल्प

प्रदान कर एक नवीन दिशा उद्घाटित की है।

सर्वांगीण दर्शन

भिन्न-भिन्न दृष्टियों से जैसे रोग के अनेक हेतु बताए जा सकते हैं, वैसे ही आरोग्य के उपायों के विषय में भी वैविध्य होता है। प्राणचिकित्सा के अनुसार प्राण का असंतुलन रोग का कारण होता है। उसका सन्तुलन कर आरोग्य उपलब्ध किया जा सकता है। रंग-चिकित्सा शास्त्र, रंग की अप्रशस्तता को तनाव, कुण्ठा, आलस्य आदि के साथ अनेक शारीरिक बीमारियों का कारण मानता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने बताया-हमारे चैतन्य की रश्मियां जब तैजस शरीर में से होकर निकलती हैं, तब उस रश्मि समूह से एक इलेक्ट्रो मेग्नेटिक फील्ड का निर्माण होता है। उस आभावलय के रंग, गन्ध, रस और स्पर्श के माध्यम से व्यक्ति के भावों की प्रशस्तता और अप्रशस्तता का ज्ञान किया जा सकता है, रोग का निदान किया जा सकता है। रंग, गन्ध आदि का परिवर्तन कर चिकित्सा की जा सकती है। प्राचीनकालीन पुष्प-चिकित्सा, रत्नचिकित्सा, रसचिकित्सा, ऊर्जा और विद्युतीय संप्रेषण से की जाने वाली स्पर्श चिकित्सा, ध्वनि और मंत्र चिकित्सा आदि के द्वारा आधुनिक रेकी, सूर्यकिरण, फेथहीलिंग आदि के क्षेत्र में नव्य क्रांति लाई जा सकती है। आचार्य महाप्रज्ञ ने स्वास्थ्य के क्षेत्र में आसन, प्राणायाम, आहार, मुद्रा, मंत्र आदि के समन्वित प्रयोग प्रदान कर एक सर्वांगीण दर्शन दिया है। उन्होंने बताया-स्वस्थ रहने के लिए केवल पोषण ही कार्यकारी नहीं हो सकता, विजातीय तत्त्वों का रेचन भी आवश्यक है। केवल रेचन से ही आरोग्य नहीं मिलता, वीतरागता पूर्ण प्रेक्षा (दर्शन) भी चाहिए।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि अध्यात्म मनीषी आचार्य महाप्रज्ञ ने अपनी विलक्षण प्रज्ञा से स्वास्थ्य का एक ऐसा अनुपम दर्शन दिया है जो मनुष्य की समस्त आधियों, व्याधियों और उपाधियों को निरस्त कर सकता है। अपेक्षा है व्यक्ति उनके प्रवचनों एवं साहित्य के द्वारा आलोक प्राप्त करें। एक समन्वित अन्वेषण कार्य प्रारम्भ हो, व्यवस्थित प्रशिक्षण हो और जीवन में उसका प्रयोग कर समाधि की दिशा में अग्रसर हों।

बोधकथा

संवेदनशीलता

अमरीका के एक बहुत धनाढ्य व्यक्ति ने एक आदमी को सबक सिखाने की ठानी। वह व्यक्ति धनी आदमी का कर्जदार था। कर्ज की रकम बहुत कम थी, किंतु उस धनाढ्य व्यक्ति ने उस बेचारे पर मुकदमा चलाकर उस पर धौंस जमानी चाही। धनी ने एक वकील अब्राहम लिंकन (अमरीका के 16वें राष्ट्रपति) से भेंटकर उन्हें अपना केस लड़ने के लिए राजी करना चाहा। बोला, 'आपकी जो फीस हो, मैं देने को तैयार हूं, लेकिन उसको सबक सिखाए बिना नहीं छोडूंगा। भले और उदारमना लिंकन ने उस जिद्दी को बहुत समझाया कि मात्र ढ़ाई डॉलर रकम की ही तो बात है। माफ कर दो। धनी आदमी ने कहा, 'मेरा चाहे सब कुछ बिक जाए, लेकिन उसे सबक सिखाए बिना नहीं छोडूंगा। हर हालत में उस पर केस करूंगा। लिंकन ने कुछ सोचकर कहा, 'अगर मुझे अपना वकील नियुक्त करना चाहते हो तो मेरी फीस दस डॉलर होगी।'

लिंकन ने जान-बूझकर अपनी फीस-बढ़ा-चढ़ाकर बताई कि ढ़ाई डॉलर के लिए दस डॉलर का प्रस्ताव सुनकर वह आदमी पीछे हट जाएगा, किंतु उस व्यक्ति ने कहा, 'कोई बात नहीं, मैं आपको दस डॉलर दे दूंगा। मेरा केस लड़ें।' कहकर उसने दस डॉलर उसी समय लिंकन के हाथ पर रख दिए। उसी शाम को लिंकन उस गरीब कर्जदार के पास गए और पांच डॉलर उसे देकर कहा, 'यह रकम मैंनें दी है, इसे बताने की जररूत नहीं। तुम अभी जाओ और उस हठी आदमी से कर्ज ली हुई रकम चुका आओ।' जिसके मन में करुणा और संवेदनशीलता है, वह किसी भी हालत में दूसरे को कभी दु:खी नहीं बना सकता।

वर्तमान में जैन दर्शन की विशिष्ट पहचान अहिंसामूलक सिद्धान्त एवं विचारों से बनी है। 'अहिंसा परमो धर्मः' यह उद्घोष बार-बार सुनाई देता है। इस परिप्रेक्ष्य में आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने जैन दर्शन की मौलिक अवधारणा की प्रस्तुति देते हुए भगवान महावीर के सिद्धान्तों की पुनर्स्थापना की। उनके शब्दों में 'अपरिग्रहः परमो धर्मः' यह कथन अधिक युक्तियुक्त लगता है। अपरिग्रह है तो अहिंसा है। हिंसा के अनेक कारणों में एक महत्त्वपूर्ण कारण है-परिग्रह। अपरिग्रह कारण है, अहिंसा उसका कार्यरूप परिणाम है। अपरिग्रह की चेतना जागृत होने पर ही अहिंसा जीवन में फलीभूत हो सकती है। अपरिग्रह शब्द की व्याख्या दो रूपों में की जा सकती है-

1. परिग्रह होना, परन्तु उसके प्रति मूर्च्छा, मोह, रागात्मक भाव का परित्याग, 'मेरेपन' के भाव का विलीनीकरण। यह व्यावहारिक अपरिग्रह है।

2. परिग्रह का अभाव, पूर्ण रूप से बाह्य एवं आंतरिक परिग्रह से मुक्ति। यह नैश्चयिक अपरिग्रह है।

दशवैकालिक सूत्र में मूर्च्छा को परिग्रह कहा है। इस कथन की पुष्टि आचारांग सूत्र में प्राप्त होती है कि इस जगत् में जितने मनुष्य अपरिग्रही हैं, वे इन वस्तुओं में मूर्च्छा न रखने के कारण ही अपरिग्रही हैं। जब तक आन्तरिक मूर्च्छाभाव समाप्त नहीं होता, व्यक्ति नैश्चयिक अपरिग्रह की भूमिका में आरोहण नहीं कर सकता। तात्पर्य यह है कि वस्तु का होना या न होना महत्त्वपूर्ण नहीं है, उस वस्तु के प्रति ममत्व का भाव होना परिग्रह है। वस्तु का अस्ति भाव है तो नास्ति भाव भी होता है। बिना अस्तित्व के नास्तित्व या बिना नास्तित्व के अस्तित्व का कथन नहीं किया जा सकता। परिग्रह है किन्तु उसके प्रति मोह का भाव न हो-यह अपरिग्रह शब्द की एक व्याख्या है।

अपरिग्रह शब्द की दूसरी व्याख्या है-जहां परिग्रह का पूर्ण रूप से अभाव हो। द्रव्य तथा भाव-दोनों प्रकार के परिग्रह से मुक्त होना, सिद्ध अवस्था को प्राप्त करना, वास्तव में अपरिग्रही होना है। निश्चय नय से परिग्रह का अंश मात्र भी न होना अपरिग्रह है। आचारांग में कहा गया है-वीतराग पुरुष राग और द्वेष दोनों अंतों से अदृश्यमान होता है। ठाणं सूत्र में तीन प्रकार के परिग्रह-उपाधि की व्याख्या प्राप्त होती है-कर्म, शरीर तथा बाह्य भंडोपकरण। इन तीन प्रकार के परिग्रह से मुक्त होना ही वास्तव में अपरिग्रही होना है। चेतना का शुद्ध स्वरूप तभी अभिव्यक्त हो सकता है जब पूर्ण रूप से परिग्रह का अस्तित्व समाप्त हो। अस्तित्व ही समाप्त हो जाए तो निषेध का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। यहां आंशिक अपरिग्रही होने या बनने की बात नहीं है अपितु अपरिग्रह की पराकाष्ठा का स्वीकार है। यह शाश्वत भाव है, अनादि नित्य स्वरूप है। यह नैश्चयिक अपरिग्रह है।

प्रथम व्याख्या समता के आचरण को पुष्ट करती है। आचारांग में कहा गया है कि पुरुष जीवन में समता का आचरण कर अपने चित्त को प्रसन्न करें। व्यावहारिक जगत् में जीता हुआ व्यक्ति जैसे-जैसे राग-द्वेष की चेतना से मुक्त होता जाता है, उसकी समत्व चेतना जागृत होने लगती है। यह व्यावहारिक अपरिग्रही की भूमिका है। क्रमशः आरोहण करता हुआ व्यक्ति वीतराग की भूमिका को प्राप्त कर नैश्चयिक रूप से अपरिग्रह की अवस्था को प्राप्त कर सकता है। यह शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित होना है। ध्यान और ध्याता का द्वैत यहां समाप्त हो जाता है। सालंबन ध्यान से निरालंबन ध्यान की स्थिति से होते हुए सिद्धि को समीप किया जा सकता है। यही अभीष्ट है।

'दया' का प्रयोग आचार्य भिक्षु ने अहिंसा-दर्शन के संदर्भ में किया है। दया का सीधा अर्थ होता है-करुणा, अनुकम्पा। इसी संदर्भ में आचार्य भिक्षु ने महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया-

'दया' सहु कोई कहे, ते दया धर्म छे ठीक।
दया ओलख ने पालसी, त्यारी मुगत नजीक।।''

इसका अर्थ है-दया को अहिंसा धर्म कहा गया है। इसकी सही जानकारी कर, इसका सम्यक् रूप से पालन जो करेगा, उसके लिए मोक्ष नजदीक, निकट हो सकता है। इस प्रकार स्पष्ट निर्देश है कि अहिंसा को चरितार्थ करना है तो उसका आधार 'दया' अर्थात् करुणा है। आचार्य भिक्षु ने 'दया' को आत्मरक्षा के अमोघ मंत्र के रूप में स्वीकार किया। शरीर रक्षा उनके लिए गौण थी। जहां शरीर रक्षा गौण होती है, वहां परिग्रह के लिए किसी भी प्रकार का अवकाश नहीं रहता।

संसार में भौतिक पदार्थों का जो उत्पादन, विनिमय एवं विकास हो रहा है, उन सबका उद्देश्य शारीरिक सुख, सुरक्षा एवं समृद्धि है। जहां यह उद्देश्य केन्द्र में आ जाता है, वहां परिग्रह अपरिहार्य हो जाता है। आत्मरक्षा एवं 'दया' के भाव गौण हो जाते हैं। आत्मरक्षा की दिशा में विकास करने का अर्थ ही है-परिग्रह का अल्पीकरण, पदार्थ चेतना से मुक्ति। विश्व में हिंसा के साधनों का जो विकास हो रहा है, वह सारा परिग्रह-चेतना के कारण हो रहा है। अपरिग्रह के अभाव में अहिंसा स्थापित हो नहीं सकती। इस प्रकार दया, अपरिग्रह एवं अहिंसा-तीनों की संयुति से ही मोक्षाराधना संभव हो सकती है। आचार्य भिक्षु द्वारा प्रदत्त 'दया' का सूत्र अपरिग्रह चेतना के विकास का मूलमंत्र है।

संसार में भौतिक पदार्थों का जो उत्पादन, विनिमय एवं विकास हो रहा है, उन सबका उद्देश्य शारीरिक सुख, सुरक्षा एवं समृद्धि है। जहां यह उद्देश्य केन्द्र में आ जाता है, वहां परिग्रह अपरिहार्य हो जाता है। आत्मरक्षा एवं 'दया' के भाव गौण हो जाते हैं। आत्मरक्षा की दिशा में विकास करने का अर्थ ही है-परिग्रह का अल्पीकरण, पदार्थ चेतना से मुक्ति।

आचार्य भिक्षु अहिंसा के एवं अपरिग्रह के सूक्ष्म व्याख्याता थे। आचार्य भिक्षु ने मर्यादाओं का निर्माण किया, इसलिए तेरापंथ अनुशासन बेजोड़ बन रहा है। यह सच्चाई मुखर होती रहती है किन्तु यह पूर्ण सच्चाई नहीं है। मर्यादा एवं अनुशासन के साथ तेरापंथ धर्मसंघ की नींव में अहिंसा, दया, दान जैसे सिद्धान्तों की संयुति एवं प्रयोगों से चतुर्मुखी विकास हो रहा है। आचार्य भिक्षु ने 'दया' की भाषा में अपरिग्रह के सूत्र पर बल दिया और आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रेक्षाध्यान में अनुप्रेक्षा के प्रयोगों से करुणा की चेतना को विकसित करने की पद्धति प्रस्तुत की। आचार्य महाश्रमण अहिंसा यात्रा के माध्यम से अनुकम्पा की चेतना जगाने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकार ये सारे सिद्धान्त एवं प्रयोग अपरिग्रह की चेतना के विकास के हेतु ही है। वस्तुतः अपरिग्रह के विकास से ही अहिंसा फलित होती है। अपरिग्रह के विकास के लिए करुणा या दया का भाव अनिवार्य है।

इच्छा-विवेक

- डॉ. समणी सत्यप्रज्ञा

जीवन का लक्षण है-इच्छा
आदर्श जीवन का लक्षण है-
इच्छा-विवेक।
जिनके जीवन-कोश में शब्द हैं-
सत्यं शिवं सुन्दरम्
सत्-चित्-आनंद
ज्ञान-दर्शन-चारित्र।

सुगम है इनकी उपलब्धि
जब हो जाता है- चेतना का नाभि-कमल से
हृद्-कमल की ओर प्रस्थान,
ललाट के मध्य शरद्-शशि का अवस्थान,
सर्वेन्द्रिय संयम के साथ
शान्त-संतुष्ट-पवित्र जीवन का
सहज विन्यास।

उनकी नजर देखती है-
परिणाम भद्र
श्रेयस्कर
ऊर्ध्वारोहण।

इस स्थिति में
आसान है संन्यास।
स्वयं की स्वयं से
मुलाकात।

आचार्य महाप्रज्ञ
एक शब्द : एक चित्र
अनुभूति
अनुभूति
वह सम्पदा है
बाहरी सम्पदा
जिसकी परिक्रमा कर
स्वयं को
धन्य मानती है।
अनुभूति
वह वृक्ष है
जिसकी शाखाएं
जीवन के
शत-सहस्र कोणों का
स्पर्श करती है।
वंदन-अभिनंदन
कमल कुमार अंकित बुच्चा, श्रीडूंगरगढ़
श्री महावीर टिम्बर स्टोर्स, आसाम टिम्बर मार्केट, स्वर्ण पार्क-नांगलोई
दिल्ली-110041, फोन : (011-28342403)

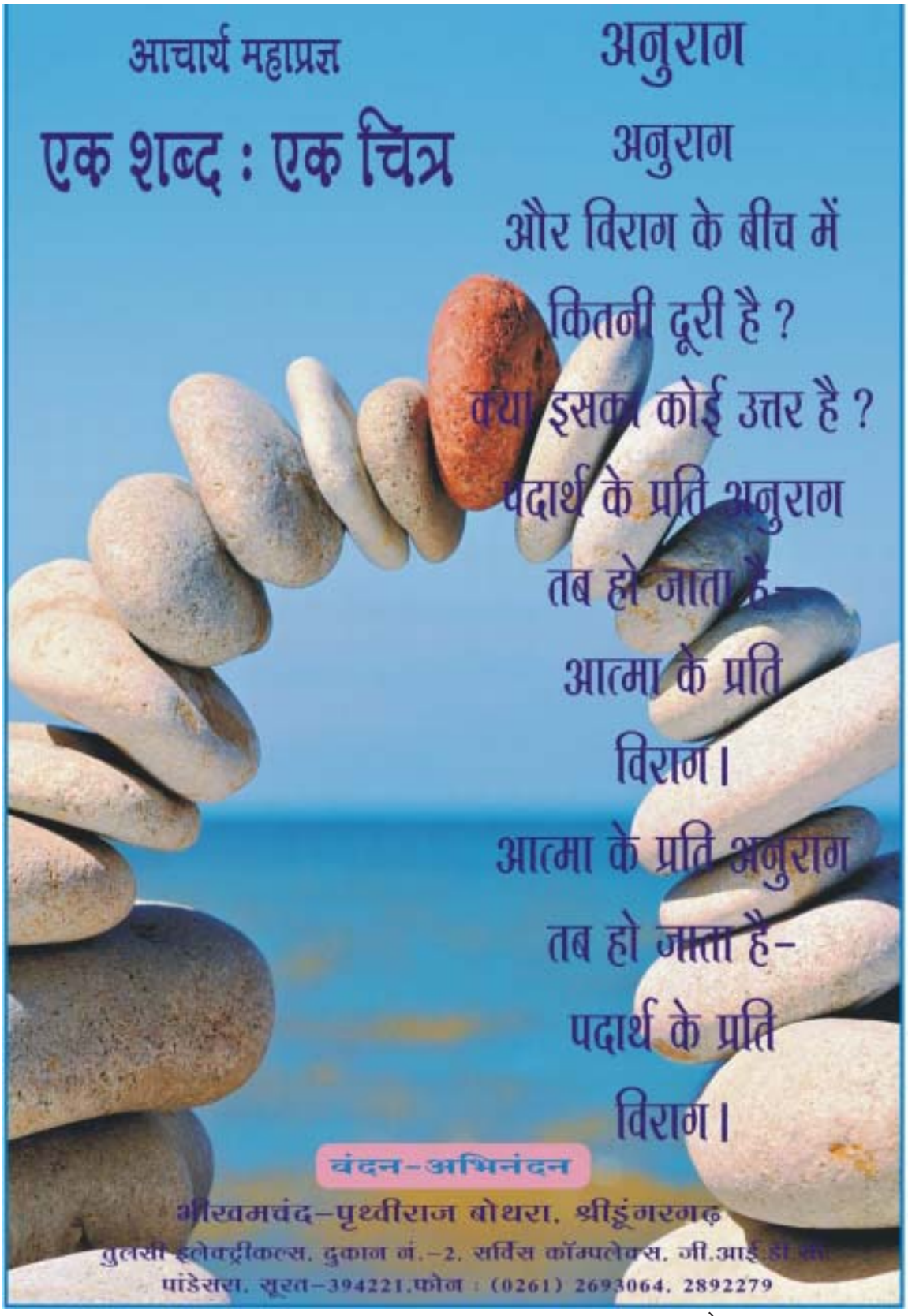
आचार्य महाप्रज्ञ
एक शब्द : एक चित्र
अनुराग
अनुराग
और विराग के बीच में
कितनी दूरी है ?
क्या इसका कोई उत्तर है ?
पदार्थ के प्रति अनुराग
तब हो जाता है-
आत्मा के प्रति
विराग।
आत्मा के प्रति अनुराग
तब हो जाता है-
पदार्थ के प्रति
विराग।
वंदन-अभिनंदन
श्रीखमचंद-पृथ्वीराज बोथरा, श्रीडूंगरगढ़
तुलसी इलेक्ट्रीकल्स, दुकान नं.-2, सर्विस कॉम्पलेक्स, जी.आई.डी.सी.
पांडेसरा, सूरत-394221,फोन : (0261) 2693064, 2892279

आचार्य महाप्रज्ञ
एक शब्द : एक चित्र
अमीर
जिसके पास
वैभव है
वह
होता है
धनी।
जो व्यक्ति
वैभव का
उपयोग करता है
विलास और
भोग में
वह होता है
अमीर।
वंदन-अभिनंदन
धर्मचंद, रणजीत, वंश लूंकड़
राणावास – चेन्नई

आचार्य महाप्रज्ञ
एक शब्द : एक चित्र
अमृत
कोई मृत है
इसलिए
अमृत की कल्पना
की गई।
दार्शनिक भाषा में सोचें—
अस्तित्व अमृत है,
पर्याय मृत है।
मृत और अमृत को
कभी पृथक्
नहीं किया जा सकता।
भाव का
एक प्रवाह
प्रेम पैदा करता है,
वह अमृत है।
भाव का
एक प्रवाह
द्वेष पैदा करता है,
वह
विष बन जाता है।
वंदन-अभिनंदन
मनोज गुजरानी (सरदारशहर)
लईटेक डायमंड टूल्स प्रा. लि., जे468, सीतापुरा औद्योगिक क्षेत्र,
टोंक रोड़, जयपुर-302022, फोन : (0141) 2770082

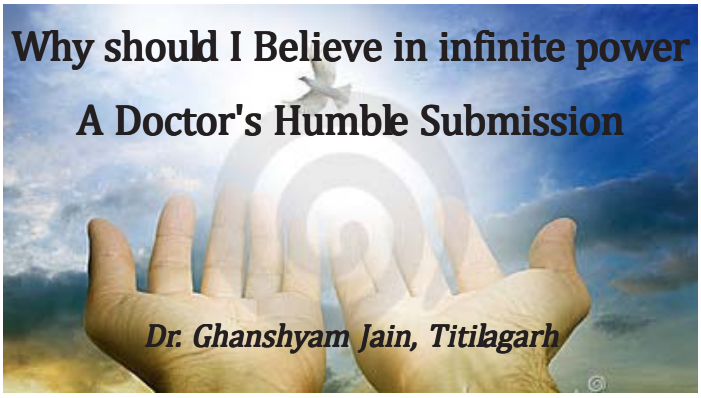

Very often I ask a question to myself (and many others must also be doing the same, I believe) as to why should I believe in the existence of such infinite power.

Today it is the age of proving the so called facts by putting together the real evidences based on proofs & figures and not merely by arguments & beliefs. From very childhood, since the beginning of development of our knowledge and wisdom about worldly behaviors and religion, various age-old dogmatic (if I may say so) beliefs are injected in to our tiny plastic mind, which mounds itself in due course and prepares a hardware in our brain, which refuses to accept any argument contrary to the so called deep rooted belief systems. But today is the modern age of science & technology many wise and intelligent young people ask for evidence in favor of such infinite power. Here is a small endeavor to prove the same through a lot many unbelievable and mind blowing facts of medical science, a little of which I have collected with a hope that they will definitely force the reader to give a little thought, if not believe it in its entirety.

As we all know that our body starts forming in the womb of our mothers with the half cell (ovum) of our mother and half cell (sperm) of our father, which combines together, otherwise known as FERTILISATION. This single tiny fertilized cell has hidden inside it, the world's most powerful potential, to transform itself into a full human being (or any other creature starting from a small insect to a mammoth elephant or whatever name or form one can think of). This single cell multiplies in due course to 2cells/ 4cells/16cells and so on & so forth to an unbelievable about 75 to 100 trillion cells, that make up our body. Not only this simple powerful cell multiplies enormously during 9 months in our mother's womb to an unbelievable number but also it has a wonderful potential to divide into special types or tissues/organs/systems of the body as per the need to perform different functions. Who does all these things without a mistake or fault?

Let me go into each and every organ of the body starting from a tiny cell. One can imagine the size of a cell, as to how small it is. If I say, the space occupied by the tip of a pin can accommodate about 10,000 cells and still amazing the fact that each cell behaves as one of the bigest factories of the world, one can think of. Each living cell behaves as one of the preparing & storing different kinds of nutrients like carbohydrates, proteins, fats, vitamins, invaders like bacteria and viruses like warriors (otherwise we cannot leave a single day on this earth), carry gentic information in its DNA, (Which are species specific, racial specific, & even individual specific, excreation, reproduction etc. etc. One will be amazed to know that,

1. About 1 lac chemical reactions occurs in each cell and now multiply the 1 lac with 75 to 100 trillion cells that make up our body, the answer has more zeros that most modern & sophisticated calculators can display, yet every second, that mind bogging chemical reaction takes place inside us.
2. In one second, about 10 million cells die and nest second, new 10 million cells regenerate to take their place.
3. The pancreas regenerates almost all its cells in one day.
4. Communication between cells occurs even faster that the speed of light, while discharging different function of the body.
5. If we could unravel the DNA of all the cells of our body and stretch it end to end it would reach to the sun and back 150 times.

What name will you give to that force or power, which regulates all this?

Now lets us give a look to the heart. A small muscular pump, the size of a closed fist, the most powerful, efficient & durable pump, the world has ever seen or manufactured. One will be simply astonished to know, it pumps about 7 to 10 litres of blood every minute & about 10,000 litres every day or even more at times. One can imagine how much it would have pumped throughout lifetime, say a life span of approximately 70 to 80 years (about 250 to 300 million liters) & that too, it starts functioning as early as only 5 weeks of intrauterine life, which can be detected now a days by ultrasound and still unbelievable that fact is, it never takes rest, never demands a servicing or repair and continues to work non-stop and quite efficiently without any complaint till about 80% of its feeding arteries (coronaries) are not blocked. Can anyone tell me a single example of best of pumps in this modern world, which can function for long 70 to 80 years and pump so much of fluid ceaselessly and efficiently without any intermittent repaire or servicing?

Let me now talk about one of the filters called "kidneys" weighing only about 250 grams each. The most technically advanced dialyeses machines of the modern world can filter only about 10% to 20% of body's blood in one hour and it is so costly that is it almost impossible to afford for more than one month even by the so called richest people of the world, what to speak of the poor, whereas, the two small kidneys, can filter, without any mistake, for whole life (or at times even one kidney can do). May I now venture to ask, what that power which governs, is so accurately, the flawless functioning of these organs, in millions & millions of not only human beings, but all the countless creatures, one can think of in this universe, if not the infinite power inherent to us.

There are numerous other examples I can cite of, which is beyond the scope of this chapter. For ex. the best of cameras in this world can't compete with the photographic excellences of the eyes, the best of speakers can't compete with the voice box containing only two small leaf like cords inside it, the best of shock absorbers in modern vehicles fail to function properly after about 5 years whereas the human joints work for more than 60 years, best of computers cannot perform even 1% of the function performed by the supercomputer called BRAIN. Still more amazing fact is that no two faces are same among the 7 billion world population and no two finger prints or tongue prints are same in this universe even in twins, how SURPRIZE!!!

I would now like to urge upon my wise readers to take a pause and think of unbelievable, unfathomable and unimaginable continuous process working as hidden infinite power. I believe, trust and pay reverence to that infinite power living within me.

'Aparigraha' A Principle of Environmental Ethics

Samani Rohini Pragya

The principle of *aparigraha* in Jainism implies to the notion of restraining one's desire. The desires that are not associated with our primary need should be abandoned. But even in satisfying the primary needs one can practice the principle of *aparigrha.* The only thing is one need to be vigilant in use of properties that are essential for our life. In the jargon of environmental ethics *aparigraha* is to reduce the wastage of materials, pollution, misuse and to enhance a sense of co-existence, co-operation and harmony with the entire biotech and a biotech world. The seven principles can be traced that satisfies environmental ethics as well as the vow of *aparigraha*, they are as follow

1. Rethink - When ever we plan to be an owner of any article we need to rethink 'do I really need this thing right now'. In fact we must keep thinking how much is too much for me.

2. Refuse - Today many people around the world has refused the use of plastic carry bags. We can refuse many such things without which our life can run still smoothly. We should thus take an initiative to refuse many such things that threats the well being of our planets and the entire bio-diverse world.

3. Reduce - We need to seriously reduce the generation of wastes. An awareness of repairing, reusing and sharing things will keep to reduce wastage. It is a well established fact that single-use kind of goods generates termendous waste. We can develop an habit of replacing them by products, which lasts long. Instead of 'disposables' like paper and plastic cups, paper, napkins we need to come back in our own culture of using metal plates, glasses and cotton napkins.

4. Reuse - Using the waste material in its present form again to serve other purpose is known as reuses of an object. It could be done in innumerable ways. For instance, when grand mother stiches a new quilt by joining old pieces of clothes, it is its reuse. Feel proud in reusing things for, it also gains the status of an art. We Indians are expert in it.

5. Recycle - Recycling demands segregation of all recyclable wastes. Recycling is the reprocessing of unwanted materials into new, useful products.

6. Regulate - We need to regulate an idea of following set rules. Some principles of being eco-friendly are to be followed and regulated in all around our relations.

7. Research - Do you know that the idea of an eatable ice-cream cone was created in an effort to reduce the waste of plastic ice-cream cups. Let us undertake practical research from our life experience that will make us more vigilant. A life-style developed on the basis of these principles can be named as a *aparigrahi* life-style as well as an eco-friendly life-style. Preksha Meditation is a technique that develops the level of consciousness. These principles thus can be vigilantly followed only by a developed consciousness.

जिज्ञासा आपकी : समाधान परम पूज्य का

प्रश्न - शरीर स्थिर होने पर मन स्थिर हो जाता है और शरीर चंचल होने पर मन चंचल हो जाता है। परन्तु ध्यान में शरीर तो स्थिर रहता है, फिर भी मन चंचल रहता है। भजन, कीर्तन, जप आदि करते समय शरीर तो चंचल रहता है, फिर भी मन स्थिर हो जाता है। इस दृष्टि से यह संगत कैसे होगा?

उत्तर - हमने मन को अकारण ही अपराधी बना रखा है। चंचलता के मामले में मन का उतना दोष नहीं है, उतना अपराध नहीं है जितना कि हमने मान रखा है। मन बेचारा वाहक है। वह तो अभिव्यक्ति का साधन है। हमारे सामने बल्ब है। विद्युत् धारा आती है और वह बल्ब उसे प्रकट कर देता है। बल्ब विद्युत् को पैदा नहीं करता, उसे प्रकट करता है। चंचलता मन की नहीं है और मन में नहीं है। वह है- स्मृति की और संस्कार की। स्मृति हमारे मस्तिष्क के कोष्ठों में संचित है। हमारे स्मृतिकोष उत्तेजित होते हैं, वृत्तियां जागृत होती हैं, उन्हें अभिव्यक्ति मन देता है, इसीलिए हम सारा दोष मन पर मढ़ देते हैं। वास्तव में चंचलता होने में मन का दोष क्या है? यदि हम संस्कारों को अर्जित न करें स्मृतियों को अर्जित न करें, और एक धारा की भांति, जैसे कि वे हमारे भीतर आएं और बहकर दूसरी ओर चली जाएं तो मन चंचल नहीं होगा। शरीर के स्थिर होने पर मन चंचल होता है, उसे समझने में शायद हमारी भूल हो सकती है। शरीर की स्थिरता सधी या नहीं सधी, यह जानना भी कुछ सरल नहीं है। हम स्थिरता की मुद्रा में बैठ जाएं, यह एक बात है किंतु जब तक मन का शरीर से योग नहीं होता, शब्द और विकल्प का मन से वियोग नहीं होता, वियोजन नहीं होता, संयोजन बना रहता है, तब तक स्थिरता सधती नहीं है। शरीर की स्थिरता के लिए जरूरी है कि जैसे उसमें गति न हो, वैसे ही उसमें आसक्ति का वेग भी न हो। यदि आसक्ति का धागा खींचा हुआ रहता है, ममत्व की रस्सी से हम उसे खींचते रहते तो शरीर की स्थिरता सधती नहीं है, शरीर की स्थिरता निष्पन्न नहीं होती, शरीर का विसर्जन सही अर्थ में फलित नहीं होता। हमें इस बात को समझना जरूरी है कि शरीर की अप्रकम्पता कैसे निष्पन्न हो? उसकी निष्पत्ति के लिए शारीरिक अवयवों को निर्देश देना बहुत जरूरी है। शरीर के अवयवों को निर्देश देना-आज यह कोरी कल्पना की बात नहीं। प्रयोग-भूमि पर सारा उतर रहा है। कोष्ठबद्धता की स्थिति में जो लोग आदेश नहीं किन्तु प्रेमपूर्वक अपनी आंतों को निर्देश देते हैं, उनके उत्सर्ग की क्रिया ठीक होने लग जाती है। दूसरे-दूसरे अवयवों में ऐसा घटित होता है। ऐसा क्यों होता है?

इसका एक कारण है। भगवान् महावीर से पूछा गया-भंते! हमारा मन सजीव है या निर्जीव? चेतन है या अचेतन? भगवान् ने कहा-मन जीव नहीं, अजीव है। मन चेतन नहीं, अचेतन है। वाणी के बारे में पूछा तो भगवान् ने वही कहा, वाणी अजीव है और अचेतन है। जब काया के बारे में पूछा तो भगवान् ने कहा-काया सजीव भी है और निर्जीव भी है, काया चेतन भी है और अचेतन भी है। काया चेतन कैसे? वह पौद्गलिक है। पुद्गलों का, परमाणुओं का संघात है। फिर सजीव कैसे? चेतन कैसे?

काया का हमारी चेतना से इतना घनिष्ठ संबंध है कि शरीर के अणु-अणु में चेतना व्याप्त है। चेतना के बिना काया की प्रवृत्ति नहीं होती और काया के बिना चेतना की अभिव्यक्ति नहीं होती। अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा और पहला साधन है-शरीर। इस निकटता के कारण, इस तादात्म्य जैसी स्थिति के कारण शरीर को चेतन भी बतलाया है। जहां चेतन का प्रवेश है, अणु-अणु में चेतना व्याप्त है तो जो निर्देश हम काया को देते हैं, वह काया को नहीं, हमारी चेतना को निर्देश प्राप्त होता है और चैतन्यमय अणु-अणु जो हैं, वे हमारे निर्देश को स्वीकार करते हैं, मान लेते हैं और हम जिस ओर ले जाना चाहते हैं, उस ओर जाने को तैयार हो जाते हैं। ध्यान करने से पहले अपने शरीर को ठीक से निर्देश देने का अभ्यास करें तो काया में अद्भुत रूप से स्थिरता आने लगेगी। उस स्थिति में मन और वाणी एकदम शांत हो जाएंगे। मन की स्थिरता के लिए काया की स्थिरता जरूरी है, वैसे ही काया की स्थिरता को समझना और काया की स्थिरता को ठीक से साधना भी जरूरी है। अगर यह ठीक से सध जाये तो फिर यह शिकायत नहीं हो सकती कि काया के स्थिर होने पर भी मन चंचल रहता है। भजन, कीर्तन, जप में मन स्थिर नहीं होता, एक दिशागामी हो जाती है। दिशागामी होना अलग बात है और स्थिर होना अलग बात है। इसलिए दोनों विषय में हमारी यह भ्रांति नहीं होनी चाहिए। हमारी व्याप्ति के विपरीत व्याप्ति नहीं होनी चाहिए। वह ऐसी होगी कि जहां काया की स्थिरता है, वहां मन की स्थिरता है। जहां काया की चंचलता है, वहां मन की स्थिरता नहीं है।

प्रश्न - अहंकार और ममकार का सीधा सम्बन्ध मन से है या शरीर से? मन से है तो शरीर के शिथिलीकरण से क्या लाभ है?

उत्तर - शरीर की प्रवृत्ति और उसके साथ-साथ श्वास के संस्कार पर जो चोट लगती है, उससे स्मृति जाग उठती है और उस स्मृति के जागते ही अहंकार और ममकार प्रबुद्ध होकर मन की धारा में बहने लग जाते हैं। हमें लगता है कि मन में अहंकार जाग गया, ममकार जाग गया किन्तु यह तो अभिव्यक्ति हुई। यह तो उसकी धारा में उनका बहना हुआ। किन्तु वे मन से पैदा नहीं हुए हैं, मन से आये नहीं हैं। नदी की धारा में कोई काठ बहकर आता है तो हम यह नहीं कह सकेंगे कि नदी की धारा में काठ ने जन्म लिया। उसका जन्मदाता तो दूसरा है। उसकी खोज हमें दूसरी दिशा में करनी होगी।

अहंकार और ममकार का जो जन्म है, वह मन में ही नहीं हुआ है, मन में प्रवाहित हो रहा है। इस बात को हम ठीक तरह से समझ लें तो यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि शरीर का शिथिलीकरण करने से वृत्तियों पर, संस्कारों पर, स्मृतियों पर चोट नहीं होगी। उस चोट के बिना अहंकार और ममकार की भावना जागृत नहीं होगी। अगर मूल तक जाएं, गहराई में जाएं, तो शरीर की स्थिरता और चंचलता पर हमारे संस्कारों का, हमारी वृत्तियों का, अहंकार और ममकार का प्रगट न होना या होना बहुत कुछ निर्भर करता है, यह हमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा।

पाठकों से निवेदन

प्रेक्षाध्यान के आगामी अंक निम्न विषयों पर आधारित होंगे।
रचनाकारों एवं लेखकों से अनुरोध हैं-
वे निम्न विषयों को केन्द्र में रखकर अपनी रचनाएं प्रेषित करें।

	विषय	माह	भेजने की अंतिम तिथि
1.	ध्यान और जागरूकता	दिसम्बर	15 नवम्बर, 2011
2.	ध्यान और संप्रेषण	जनवरी	15 दिसम्बर, 2011
3.	ध्यान और आजीविका शुद्धि	फरवरी	15 जनवरी, 2012
4.	ध्यान और विवेक	मार्च	15 फरवरी, 2012

छोटी सी पहल

नैतिकता की ओर

सुनामी जैसे तूफान का सामना करते जापान के लोगों ने पूरी दुनिया को बहुत कीमती सबक दिए हैं। सुनामी ने जापान के कुछ शहरों को तहस-नहस कर दिया था, लेकिन जापानियों ने काबिलेतारीफ ढ़ंग से उस नाजुक वक्त का सामना किया और एकजुट होकर वे जी-जान से अपने देश के पुनर्निर्माण में जुट गए। अपनी दुनिया को बेहतर बनाने में लग गए। एक नजर डालते हैं, इन बाशिंदों की खूबियों पर-

शांति-सुनामी के बाद प्रसारित किसी भी वीडियो में छाती पीटते और पछाड़ें मारकर रोते जापानी नजर नहीं आए। उनका दु:ख कुछ कम नहीं था, लेकिन जनहित के लिए उन्होंने उसे अपने चेहरे पर नहीं आने दिया।

गरिमा-आपातकालीन राहत मिलने के दौरान पानी व राशन पाने को वे लोग अनुशासित, कतारबद्ध खड़े रहे। किसी ने भी अनर्गल प्रलाप और अभद्रता नहीं की। जापानियों का धैर्य प्रशंसनीय रहा।

कौशल-छोटे मकान अपनी नींव से उखड़ गए और बड़े भवन लचक गए, पर धराशायी नहीं हुए। यदि भवनों के निर्माण में कमियां होती, तो और अधिक नुकसान हो सकता था।

निस्वार्थता-जनता ने केवल आवश्यक मात्रा में वस्तुएं खरीदीं या जुटाई। इस तरह सभी को जरूरत का सामान मिल सका और कालाबाजारी नहीं हुई।

व्यवस्था-दुकानें नहीं लुटीं। सड़कों पर ओवरटेकिंग या जाम नहीं लगे। सभी ने एक-दूसरे की जरूरतों को समझा और अपनी स्थिति अनुसार सहयोग किया।

त्याग-विकिरण या मृत्यु के खतरे की परवाह किए बिना पचास कामगारों ने न्यूक्लियर रिएक्टर से भरे पानी को वापस समुद्र में पम्प किया।

सहृदयता-विपदा के समय भोजनालयों ने दाम घटा दिए। जिन एटीएम मशीनों पर कोई पहरेदार नहीं थे, वे भी सुरक्षित रहे। सम्पन्न लोगों ने वंचितों के हितों का ध्यान रखा।

प्रशिक्षण-बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी जानते थे कि भूकम्प व सुनामी के आने पर क्या करना है। उन्होंने किया भी वही।

मीडिया-मीडिया ने अपने प्रसारण में उल्लेखनीय संयम और नियंत्रण दिखाया। रिपोर्टर बेअदबी से चिल्लाते या नासमझों जैसे सवाल पूछते नहीं दिखे। सिर्फ और सिर्फ पुष्ट खबरों को ही दिखाया गया। राजनीतिज्ञों ने अपनी छवि बनाने और विरोधियों पर कीचड़ उछालने में अपना समय नष्ट नहीं किया।

अंत:करण-एक शॉपिंग सेंटर में बिजली गुल हो जाने पर सभी ग्राहकों ने सामान वापस शैल्फ में रख दिए और चुपचाप बाहर निकल गए।

स्पष्ट है कि नैतिकता व संवेदनशीलता की प्राण-प्रतिष्ठा से ही शांति पूर्ण संसार का सृजन संभव है। हर व्यक्ति इस ओर प्रयत्न कर सकता है।

साक्षात्कार
प्रेक्षा साधक से.....

जिनका जीवन व कार्यक्षेत्र प्रेक्षाध्यान का उदाहरण है, कल्याण मित्र, प्रेक्षा-प्रशिक्षक के रूप में जिनकी सेवाएं सतत उपलब्ध हैं, प्रस्तुत है- रोहतक के 78 वर्षीय युवा प्रशिक्षक एस.के.जैन से हुआ साक्षात्कार। (संपादक)

डाकिया बनकर जाता हूं

प्रश्न - 1. प्रेक्षाध्यान की साधना करने की प्रेरणा आपको कब व कैसे मिली?

उत्तर - मेरी अध्यात्म में रुचि तो प्रारम्भ से ही थी। प्रेक्षाध्यान की साधना करने की प्रेरणा साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी से प्राप्त हुई। वे मेरे ध्यान की जन्मदात्री हैं। गणाधिपति गुरुदेव आचार्य-श्री तुलसी ज.ब रोहतक में पधारे, साध्वीप्रमुखाजी ने मुझे वचन बद्ध किया कि मुझे महरौली अध्यात्म साधना केन्द्र में प्रेक्षा ध्यान शिविर में आना है। यह मार्च सन् 1979 की बात है। मैं अपना वचन पूरा करने हेतु केवल एक दिन के लिए दिल्ली शिविर में गया। जब वहां ध्यान, आसन, प्राणायाम एवं प्रवचन आदि में भाग लिया, तो वापस लौटने का मन ही नहीं हुआ और पूरे शिविर काल में ठहरने का दृढ़ मन बना लिया। उस समय वहां 200 शिविरार्थी थे। यह मेरा पहला शिविर था। वहां मैंने ध्यान विधि को अच्छी तरह हस्तगत कर लिया। फिर घर आकर जमकर अभ्यास किया। 5 अप्रैल 1981 को जयपुर में गणाधिपति गुरुदेवश्री तुलसी के निर्देशन में प्रेक्षा प्रशिक्षक की परीक्षा दी जिसमें मैं ए ग्रेड का प्रशिक्षक चुन लिया गया।

प्रश्न - 2. प्रेक्षाध्यान के किस क्षेत्र में आप विशेष साधना कर रहे हैं व क्यों?

उत्तर - प्रेक्षाध्यान के सारे अंगों का अभ्यास किया है पर कायोत्सर्ग में ज्यादा रुचि है क्योंकि इससे भेद-विज्ञान होता है। अब श्वास की माला भी फेरनी शुरू की है। सेरिब्रम व दर्शन केन्द्र पर ध्यान करता हूं तथा सिर की छत के नीचे स्पंदनों को अनुभव करता हूं। स्वयं में तल्लीनता बनी रहती है। अति आनन्द मिलता है।

प्रश्न - 3. व्यक्तिगत स्तर पर प्रेक्षाध्यान से आपको क्या-क्या लाभ हुए हैं एवं परिवर्तन आए हैं?

उत्तर - प्रेक्षाध्यान से तो मुझे नवजीवन ही प्राप्त हो गया। युवावस्था में भी शारीरिक कमजोरी थी, दीपक की लौ मंद-मंद जलती थी। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों से शरीर स्वस्थ हुआ। मानसिक प्रसन्नता अत्यधिक बढ़ी है एवं भावधारा निर्मल होती जा रही है। यही कारण है कि वृद्धावस्था में भी युवकों सी कर्मठता एवं स्फूर्ति है। मैं तीन बजे से पहले जागकर आचार्य-श्री महाप्रज्ञजी की सिखाई गई ध्यान विद्या का घंटों अभ्यास करके लाभ उठाता हूं। कभी ध्यान तो कभी स्वाध्याय करता हूं।

प्रश्न - 4. आपने प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों का प्रशिक्षण किस रूप में दिया है?

उत्तर - आचार्य-श्री की महती वात्सल्य दृष्टि से शक्ति पाकर मैंने भारत के विभिन्न शहरों में शिविरों में प्रशिक्षण दिया है। स्कूलों व कॉलेजों में विद्यार्थियों को शरीर विज्ञान के माध्यम से एकाग्रता, अनुशासन एवं सहिष्णुता तथा स्मृति बढ़ाने के प्रयोग करवाता रहता हूं। प्रेक्षा कैम्प में दीर्घश्वास प्रेक्षा, कायोत्सर्ग, शरीर विज्ञान पर बल देता हूं। शिविर निर्देशन हेतु देश के पचास से अधिक शहरों में जाने का अवसर मिला है।

सभी क्षेत्रों में आवासीय शिविर एक दिन, चार-पांच दिन के, कई शहरों में तो प्रतिवर्ष शिविर हेतु बुलाते हैं। लगभग तीस वर्षों से यह क्रम बराबर चल रहा है। मई 1986 में निर्देशक श्री धर्मानन्दजी के साथ जापान मास्टर ओकी संस्थान में प्रेक्षाध्यान प्रसार हेतु गया था। आते समय हांगकांग में रोटरी क्लब एवं परिवारों के बीच

अच्छा कार्यक्रम रहा। भारत में लगने वाले अन्तर्राष्ट्रीय शिविरों में भी ट्रेनिंग देने का अवसर मिलता है।

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूं में मानद प्रोफेसर के रूप में विद्यार्थियों को प्रेक्षाध्यान पढ़ाने व करवाने का सौभाग्य मिल रहा है।

प्रश्न - 5. प्रशिक्षण से किस वर्ग को सर्वाधिक लाभ पहुंचा है व क्यों?

उत्तर - प्रेक्षाध्यान का प्रभाव प्रत्येक वर्ग पर पड़ता है, ऐसा मुझे अनुभव में आता है। गुरुदेव व आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने शक्ति संप्रेषण किया तथा मैंने लगभग सभी वर्गों में शिविरों के माध्यम से कार्य किया जिसके बहुत सुन्दर अनुभव व विचार शिविर में भाग लेने वाले बताते हैं।

आर.ए.सी. जोधपुर बटालियन नं. 1 में 5 दिन शिविर का कार्यक्रम चला जिसमें 52 कमांडों ने हिस्सा लिया। समापन में 35 कमांडरों ने नशा मुक्त होने की शपथ ली। कोटा पुलिस व जेल में,मदनगंज-किशनगंज में पुलिस ट्रेनिंग कैम्प में 400 प्रशिक्षकों को पुलिस अकादमी में कई दिन तक प्रयोग करवाए।

मैंने पाया कि सभी जगह सभी वर्ग के लोग प्रेक्षाध्यान के प्रयोग करके अति प्रसन्न होते हैं तथा विभिन्न प्रकार की अनुभुतियां व लाभ बताते हैं। पता नहीं, आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने इस विधि में कितना माल व गुण भर रखें हैं। एक बार दिगम्बर आचार्यश्री विद्यानन्द जी ने भी कहा था कि आचार्य तुलसी से कहना कि प्रेक्षाध्यान को सारे जगत में फैला दें। यह बहुत अच्छी विद्या है। दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, मूर्तिपूजक सभी सम्प्रदायों में प्रेक्षाध्यान के शिविर लोकप्रिय एवं कार्यकारी हैं। ऐसा मैंने अनुभव किया है।

प्रश्न - 6. प्रेक्षाध्यान के अधिक व्यापक प्रयोग के लिए आपकी दृष्टि में क्या समुचित कदम हो सकते हैं?

उत्तर - प्रेक्षाध्यान के सक्षम एवं निष्ठावान प्रशिक्षक सघनता से तैयार किए जाएं। प्रशिक्षक स्वयं भी प्रतिदिन प्रयोग करें। उसकी साधना में गहराई हो। शिविरों का विवरण तेरापंथ की हर एक पत्रिका में आना चाहिए। केन्द्र से महिला मण्डल की अध्यक्ष/मंत्री से हर महीने शिविर लगाने की प्रेरणा मिलती रहे।

प्रश्न - 7. चिकित्सकीय परिप्रेक्ष्य में प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों की उपादेयता के बारे में आपका क्या चिंतन है?

उत्तर - चिकित्सा के परिप्रेक्ष्य में प्रेक्षा ध्यान के अनेक लाभ हैं। शिविर में आने वाले अनुभवों में शिविरार्थी बताते हैं कि किस प्रकार उनकी बीमारियां दूर हो गईं। विशेषतः घुटनों व कमर का दर्द, पाचन क्रिया, श्वास, खांसी-दमा आदि रोग ठीक हो जाते हैं। शरीर विज्ञान के ज्ञान से आहार विवेक भी जगा है व सोच भी सकारात्मक बनती है-ऐसा लोगों ने बताया। अनिद्रा, डिप्रेशन भी कइयों का दूर हो गया। मेरी स्वयं की भी कई बीमारियां ठीक हुई है। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों एवं काउंसलिंग से अनेक व्यक्तियों की पारिवारिक व मानसिक समस्याएं भी सुलझती है। बातचीत से परस्पर सामंजस्य बैठ जाता है। कितनों ने कहा- हमारा परिवार या हम नष्ट होने से बच गये हैं। अब मैं अपने चिन्तन को बदल रहा हूं, ये सब आचार्यश्री के प्रेक्षाध्यान से ही परिवर्तन आता है। ऐसा मेरा मानना है। मैं तो उनका डाकिया बन कर जाता हूं।

प्रश्न - 8. इस साधना से जुड़ा कोई विशेष अनुभव या प्रसंग, जिसे आप पाठकों से बांटना चाहेंगे।

उत्तर - प्रेक्षाध्यान की साधना प्रारम्भ की ही थी। मैं एक दिन लेटा हुआ अन्तर्यात्रा कर रहा था कि अचानक अनुभव हुआ कि बहुत बड़ी मशीनरी तेज आवाज में भीतर चल रही है। स्पष्ट भीतर दिखाई देने लगा, भीतर के कल-पुर्जे भी दिखाई दे रहे थे। बड़ी आनन्दाभूति हुई। साधना के प्रति रुचि तीव्र होने लगी। सुषुम्ना में अन्तर्यात्रा बार-बार करने से चेतना ऊर्ध्वगामी बनने लगी।

प्रश्न - 9. युवा पीढ़ी इस साधना पद्धति की ओर आकर्षित कैसे हो सकती है?

उत्तर - युवा पीढ़ी से हमें हृदय से बात करनी होगी। उन्हें इस विधि को आसान तरीके से समझाकर गले उतारना होगा। उन्हें इसका प्रयोग मीठी गोली बना कर जब देंगे तो वे इसे आत्मसात कर लेंगें। मैं जब जीवन विज्ञान में एम.ए. वाले युवाओं की प्रायोगिक परीक्षा लेने

जाता हूं तो वे बाहर जाकर कहते हैं कि ये परीक्षक ऐसे हैं, जो न केवल पूछते हैं, अपितु साथ-साथ हमें प्रेक्षाध्यान पढ़ा भी देते हैं व औरों को लाने हेतु प्रेरणा भी हमें दे देते हैं। हमें उनसे तादात्म्य बिठाना होगा।

प्रश्न - 10. नियमित रूप से प्रेक्षाध्यान से आप किस रूप में जुड़े हुए हैं?

उत्तर - मैं प्रतिदिन प्रातः लगभग 4 से 5 घंटे प्रेक्षाध्यान, कायोत्सर्ग लेटकर, आसन व प्राणायाम तथा स्वाध्याय करता हूं। मेरा जीवन ही प्रेक्षामय बन गया है। जो भी मेरे सम्पर्क में आते हैं, उनको भी प्रयोग बताता रहता हूं। कितने डॉक्टर आदि भी अपनी समस्याओं का समाधान प्रेक्षा विधि से प्राप्त कर लेते हैं। वे समय लेकर आते हैं व अपना समाधान पाकर अति सन्तुष्ट होकर जाते हैं।

प्रश्न - 11. ध्यान के वे क्षण, जिन्हें आप कभी भुला न सकेंगे?

उत्तर - लगभग 7-8 माह पूर्व मैंने पढ़ा कि मुख्य नियोजिका साध्वीश्री विश्रुतविभा को आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने श्वास की दस माला फेरने को फरमाया था। मैंने सोचा- मैं भी आचार्यश्री की आज्ञा का पालन करूं और मैंने प्रतिदिन दस माला श्वास की फेरना प्रारम्भ कर दिया। जिसमें मुझे कई घंटे लगते थे। एक रात्रि अचानक मुझे आचार्यश्री महाप्रज्ञ के दर्शन हो गए और उन्होंने मेरी हथेली पर गोल-गोल कुछ लिखा भी। वे क्षण मेरे जीवन के रोमांचकारी क्षण हैं। बाहर के लोगों से शिविर की रिपोर्ट सुन पूज्यवर अति प्रसन्न होते व कहते थे कि तुम सब को लट्टू कर लेते हो। जब दक्षिण में भट्टारक चारुकीर्ति के प्रश्नों का सही उत्तर देकर मैंने दिल्ली आकर दर्शन किए तो गुरुदेव अति प्रसन्न हुए व फरमाया तुम हमेशा विजयी होकर आते हो। प्रज्ञा वर्ष में भरे पूरे पण्डाल में प्रेक्षा- प्रशिक्षक के रूप में मुझे संबोधित किया। भिवानी में आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने चातुर्मास समापन पर कल्याण-मित्र की उपाधि देकर मुझ अबोध को पुरस्कृत किया। ये उनकी अपार कृपा व करूणा ही तो है मुझ पर! मुझ जैसे अज्ञानी को उन्होंने स्वयं ही गढकर तराशा है। मैं इस सम्मान योग्य नहीं था। मैं अब अन्तिम श्वास तक कार्य करके आचार्यश्री व संघ के ऋण से उऋण होना चाहता हूं। जो मैंने उन महापुरुषों से सीखा है, वह सबको बताना चाहता हूं। अब आचार्यश्री महाश्रमण ने अपने मधुर वचनों से सरदारशहर में मुझे बांध लिया है। मैं प्रेक्षा के लिए ही हूं-ऐसा मानता हूं।

प्रश्न - 12. प्रेक्षाध्यान के अभ्यासी वर्ग को कोई विशेष सुझाव?

उत्तर - साधक सिखाने का लक्ष्य रखें। अपने ऊपर स्वयं प्रयोग करें। जीवन को प्रयोगशाला बनाकर प्रेक्षाध्यान का स्वयं लाभ उठाएं। तभी जीवन में कुछ प्राप्ति हो सकेगी। जब स्वयं स्रोत (झरना) बनेंगें, तभी पानी बाहर वालों को भी तृप्त कर सकेंगें।

अष्टदिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर

लाडनूं। तुलसी अध्यात्म नीडम, जैन विश्व भारती, लाडनूं में दिनांक 11 दिसम्बर से 18 दिसम्बर, 2011 को प्रेक्षा फाउण्डेशन के द्वारा आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व निर्माण के उद्देश्य से प्रेक्षा प्राध्यापक आगम मनीषी, प्रोफेसर मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी के निर्देशन में अष्टदिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर आयोजित होगा।

नोट : 1. स्थान सीमित है।

2. प्रेक्षावाहिनी एवं प्रेक्षाध्यान पत्रिका के सदस्यों के लिए यह शिविर निःशुल्क है।

: शिविर का स्थान :

तुलसी अध्यात्म नीडम, जैन विश्व भारती, लाडनूं, राजस्थान

: सम्पर्क सूत्र :

01581-222119, *E-mail : foundation@preksha.com*

कोई कनेक्शन है

- दलपत धारीवाल

प्रस्तुति - श्रीमती स्नेहलता धारीवाल

पुत्री ने पिता को एक क्विज पेपर भेजा जिसमें Favourite से संबंधित प्रश्न थे।

पिता ने प्रश्नों के उत्तर भरे –

Favourite Soul – आचार्य महाप्रज्ञ

Favourite Color - चमकीला सफेद

Favourite Work - निर्जरा

Favourite Place - ज्योति केन्द्र

Favourite Asan - वज्रासन

इसी तरह उत्तर श्रृंखला पूरी हुई। पत्र के अंत में जाने क्यों, लिख दिया –

14 सितम्बर, मंगलवार, 2010

एक सदाबहार मुस्कान के मालिक मेरे पति श्री दलपत धारीवाल ने ये पत्र भरने के बाद पर्युषण पर्व की आराधना की। उत्तराध्ययन सूत्र, महावीर की अंतिम देशना आदि का स्वाध्याय किया। अर्हं का अजपाजप चलता रहा। वैसे ध्यान और स्वाध्याय उनके जीवन के अभिन्न अंग लगभग पिछले दस वर्षों से बन चुके थे। ढ़ाई–तीन घंटे से ज्यादा सोने का स्वभाव रहा ही नहीं। ध्यान, स्वाध्याय, सामायिक, जप सब कुछ वज्रासन में नियत था। 'अहोसुखम्' की भावानुभुति में हर समय Blissful peace within, शांति व आनंदमय स्वर ही उनके मुख से मुखरित होते।

क्षमायाचना का दिन था। देश–विदेश के सैकड़ों लोगों से क्षमा का आदान–प्रदान किया। उनकी बहिन (मेरी ननंद) प्रसन्नकंवर के नौ की तपस्या का पारणा था। स्व. पिताश्री की स्मृति से भाई के सामने बहिन भाव–विह्वल थी। सामान्यतया अपने माता–पिता की स्मृति से भावाकुल हो जाने वाले धारीवालजी अपनी बहिन के सामने तटस्थ, निर्लिप्त से रहे और बोध प्रदान करते हुए कहा–'बहिन! अब समता रखो। शांति रखो।' बाद में मैनें उनसे पूछा भी–आज आप इस रूप में तटस्थ कैसे रह गए? किन्तु प्रश्न प्रश्न ही रह गया। कोई शाब्दिक जवाब न मिला। मेरे जेठजी हुकमचंद धारीवाल तंत्र–मंत्र विद् हैं। उन्होंने मेरे पति को अयाचित सुझाव दिया–'दलपत! तुम्हें इस मंत्र का जाप करना चाहिए। तुम्हारे लिए अच्छा रहेगा।' सविनय पर दृढ़ शब्दों में उन्होंने बड़े भाई को उन्होंने प्रत्युत्तर दिया 'आपको एक बात कहूं, भाईजी! मैंने तो अपनी जिंदगी में सारे कर्तव्य अच्छे से निभाए हैं। मैं इन मंत्र–तंत्र में ज्यादा विश्वास करता नहीं और आप भी इनसे ऊपर उठो। क्रोध, मान, लोभ आदि को जीत लिया तो सब कुछ अपने आप जीत लिया जाएगा। शांति और समता रखो। इनसे ऊपर उठो।'

क्षमा, समता, शांति आदि के ऐसे अनेक प्रसंगों से भावित दिन बीता। रात को थोड़ा अस्थमा का असर अनुभव हुआ। डॉक्टर के जाने हेतु भाई को बुलाया, तैयार हुए और दरवाजा खोला। सदैव ध्यान करने की दिशा में कुर्सी पर बैठे। यही वह 14 सितम्बर 2010 का दिन था। मैं पीछे की ओर खड़ी थी। आश्वासन के साथ, हाथ पर हाथ रखा और शरीर मात्र शरीर रह गया। आनंद और शांति से युक्त प्राण जाने कहां चले गए।

करणीय कार्य को पूरी गहराई से करना उनका स्वभाव रहा था। जोधपुर में इंजीनियरिंग में गोल्ड मेडलिस्ट

बनकर सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैण्ड आदि को उन्होनें अपना कार्यक्षेत्र बनाया। Western digital में निदेशक पद पर उन्होनें वर्षों तक कार्य किया। लगभग पैंतीस वर्षों का यह कार्यकाल व्यावसायिक जगत के साथ आध्यात्मिक आरोहण को भी लिए हुए था। अपनी आध्यात्मिक यात्रा के प्रारंभिक काल में वे रामकृष्ण मिशन, विवेकानंद-साहित्य, चिन्मयानंद, मुंगेर आश्रम से जुड़े। गीता, योग, ध्यान, प्राकृतिक-चिकित्सा व अध्यात्म विषयक साहित्य का पारायण किया। इसी क्रम में 1983 में मलेशिया में रतनलाल पारख के माध्यम से आचार्य महाप्रज्ञ के साहित्य से उनका परिचय हुआ और उसके बाद से, चिंतन, विचार, भाव, आचार सब कुछ एकमुखी होता चला गया। अन्य आश्रमों, मठों आदि में जाना छोड़ दिया।

एक बार उन्होंने प्रेक्षाध्यान अन्तर्राष्ट्रीय शिविर में भाग लिया और वह क्रम आगे बढ़ता गया-जिससे कालांतर में एक गहरा विश्वास भीतर में पनप गया कि 'मेरा कोई कनेक्शन है-महाप्रज्ञजी से।' सिर्फ प्रेक्षाध्यान ही उनके जीवन के लिए सब कुछ हो गया। भले घर में हो, यात्रा में हो, घंटों वज्रासन में सामायिक, स्वाध्याय, ध्यान का क्रम चलता रहता। आस-पास, भीतर-बाहर चारों ओर मानो शांति व आनंद का नर्तन होता रहता।

बड़ौदा में उन्होंने आचार्यश्री के दर्शन किए। उस समय 15-20 मिनट अकेले में आचार्यश्री ने वार्ता का अवसर दिया। वार्ता के दौरान आचार्यश्री ने विशेष ध्यान करने वाले संत मुनि, संभवतः जयकुमारजी को बुलाया। उनसे लगभग डेढ़-दो घंटा विचार-विमर्श, प्रेरणा-पाथेय का अवसर मिला। उस समय जो शक्तिशाली प्रेरणा-पाथेय मिला, उससे उनकी निरंतर अन्तर्मुखता को पोषण मिलता चला गया और आध्यात्मिक ऊर्ध्वारोहण में तीव्रता आती गयी।

धारीवालजी अपनी दूसरी लड़की की शादी के बाद ही बाह्य जिम्मेदारियों से लगभग विरत होते चले गए। उनका यह व्यवहार मुझे व दूसरों को अच्छा भी नहीं लगता। बावन वर्ष की उम्र में कार्य विरत होने का कैसे कोई सोचे! कोई काम करने का, नौकरी को जारी रखने का कहता तो भी यही जवाब मिलता-'खुद के लिए भी तो कुछ करना चाहिए।' इसी 'कुछ' में उनका नियमित क्रम था-सुबह गमन योग, ध्यान, टी.वी. पर प्रवचन श्रवण, नाश्ते के बाद फिर सामायिक, जिसमें ऊं के ध्यान के साथ कायोत्सर्ग, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा, लेश्याध्यान आदि का समयाधारित क्रम था।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ की लगभग दो सौ पुस्तकें उन्होंने पढ़ी। रात को भी ध्यान-स्वाध्याय का क्रम चलता। सार रूप में भावक्रिया उनका स्वभाव बन गया। हर पल आनंद में, वर्तमान में जीते देख उन्हें कई बार लोग कमेंट भी करते-'भाव क्रिया'। वे मैत्री सबके साथ साध चुके थे। नाम-प्रसिद्धि से दूर, किसी के दुःख-दर्द को बांट लेना उन्हें बखूबी आता था। खाने के शौकीन होते हुए भी बाद में खाने में संयम चालू कर दिया था। निद्रा-विजय का भी अच्छा अभ्यास किया। आचार्य महाप्रज्ञ से कनेक्शन में रहते हुए एक साधक आत्मा हमारे बीच रही यह सौभाग्य मानती हूं। धर्म और जीवन उनके साथ एकमेक हो चुके थे। सबको साथ लेकर चलना, सबके होकर भी निर्लिप्त रहना, निस्वार्थ करुणा, अनुकम्पा से भावित हो धर्म को सही मायने में जीने के वे उदाहरण रहे। ज्ञान-दर्शन-चारित्र की त्रिपथगा से होते हुए मोक्ष पथ की ओर अग्रसर हो गए। समाधि-शांति और आनंद की ऐसी मशाल प्रेक्षाध्यान के माध्यम से हमारे जीवन में भी अवतरित हो-इसी कामना के साथ पूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञ, वर्तमान आचार्यश्री महाश्रमण के चरणों में सादर प्रणाम करती हूं।

जितनी-जितनी छूटती जाएगी आकर्षण की सीढ़ियां।
उतनी-उतनी ही याद करेगी आने वाली पीढ़ियां।।

त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति

समणी स्वर्णप्रज्ञा

आचार्य मानतुंग ने आदितीर्थंकर की स्तुति में कहा, ''भगवन्! आपके समस्त दोषों को हरण करने वाले स्तवन को रहने दो, आपकी संकथा यानि आपका नाम मात्र भी प्राणियों के बाधाओं को दूर करता है।'' वस्तुतः महापुरुषों का नाम विघ्नों को दूर करने वाला, मंगलदायक और चिधिन्तित कार्यों को अंजाम देने वाला होता है। शिष्य, गुरु के नाम की पतवार को लेकर सुगमता और सहजता से संसार-सागर पार करता है। गुरु शिष्य के लिये न केवल मार्गदर्शक होते हैं अपितु शिष्य के लिये आश्रयदाता तथा सुखःदुःख में सबल सहारा भी होते हैं।

तेरापंथ धर्मसंघ के दशमाधिशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ का नाम एक ऐसा मंत्राक्षर है, जिसके बलबूते पर संघ के प्रत्येक शिष्य ने मन की मुरादों को एक नया मुकाम दिया है। घटना उस समय की है, जब आचार्य महाप्रज्ञ एकाएक महाप्रयाण कर गये। हमारा मन अंतिम दर्शन हेतु लालायित हो उठा। हम आसाम के बंगाईगांव में थे और यह घटना सरदारशहर (राजस्थान) में घटित हुयी। हजारों किलोमीटर की दूरी को पार कर निश्चित अवधि में पहुंच जाना संभव प्रतीत नहीं हो रहा था। हम वहां से गुवाहाटी पहुंचे। गुवाहाटी से दिल्ली तक की फ्लाइट की व्यवस्था हो गई। परन्तु जब तक हम दिल्ली पहुंचे, दोपहर के दो बज चुके थे और हमारे पास समय सिर्फ चार बजे तक का था। हमारे और वक्त की दौड़ में तब तक वक्त का पलड़ा भारी था, परन्तु किस्मत को कुछ और ही मंजूर था। वहां दो घंटे में रोड से सरदारशहर पहुंचना असंभव था। उधर समय की समस्या और इधर मन की तीव्रतम अभिलाषा। आखिर अभिलाषा को आकार मिलने का अकल्पित अवसर उपस्थित हो गया। अचानक एयरपोर्ट पर दि मॉरबल टी ग्रुप के मैनेजर रघुवीर जैन का आना हुआ।

गुरुभक्ति की प्रेरणा ने हमें उनसे मुलाकात करवाई। बातचीत के दौरान पता चला कि उनका हैलीकॉप्टर द्वारा वहां पहुंचना और चांदी के सिक्कों की वर्षा का कार्यक्रम निर्धारित था। बातचीत से हमें मालूम हुआ कि दो सीट खाली है। उनसे पूछने पर कि क्या हम भी हैलीकॉप्टर में उनके साथ चल सकते हैं, वो सहर्ष तैयार हो गए। फिर क्या था! अंतिम दर्शन के लिए प्यासे नयन उस आलोक पुंज तक पहुंच ही गए। लगा, गुरु का नाम भी ध्यान का दिव्य आकाश है जिसका आश्रय मिल जाने से बाहरी व भीतरी समस्या को समाधान स्वतः मिल जाता है।

बोधकथा

उऋण

साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सामने एक बार ऐसी स्थिति आई कि आर्थिक तंगी के चलते पत्रों का जवाब कैसे दे-टिकिट लगाने को पैसे नहीं। पत्र लिफाफे में बंद कर रखते गए, मेज पर ढेर लग गया। एक मित्र ने देखा और 5 रुपये के टिकट ले आया। सारे पत्र पोस्ट हो गए। हरिश्चन्द्र की स्थिति सुधरी-जब भी वह मित्र मिलता-हरिश्चन्द्र उसकी जेब में 5 रुपये डाल देते। मित्र ने कहा-ऋण तो चुक गया-अब क्यों? हरिश्चन्द्र ने कहा-तुमने सहयोग ऐसे समय दिया कि जीवनभर प्रतिदिन 5 रुपया चुकाऊं तो भी उऋण न हो सकूं शायद।

अनुभव के स्वर ...

चेन्नई में साध्वीश्री कीर्तियशाजी के सान्निध्य में आयोजित पंच दिवसीय शिविर के अनुभव

आत्मा में लीन होना सीखा

पहली बार मैंने प्रेक्षाध्यान के शिविर में भाग लिया। प्रेक्षाध्यान की पद्धति को जानने और जीवन में उतारने का उद्देश्य सामने था। शिविर में करवाए गए प्रयोगों से यह अनुभव हुआ कि व्यक्ति को अपने राग-द्वेष को छोड़कर अपनी आत्मा में लीन हो जाना चाहिए। प्रेक्षाध्यान के प्रयोग करने से यह ज्ञात हुआ कि हमें अपनी आत्मा को जगाने के साथ-साथ दूसरों की आत्मा को जगाने का भी प्रयास करना चाहिए।

- सूरज कटारिया, चेन्नई

कई बीमारियों से मुक्ति पाई

प्रेक्षाध्यान के शिविर में सहभागी बनकर आनंद और शांति की अनुभूति हुई। यौगिक क्रियाओं और आसनों के प्रयोग से पेट की चर्बी कम हुई। विभिन्न प्रयोगों से गैस की बीमारी से भी मुक्ति मिली। ध्यान के प्रयोग से स्वस्थता और प्रसन्नता का अनुभव हुआ।

- कान्ता छल्लानी, चेन्नई

व्यक्तित्व विकास के सूत्र सीखे

इस शिविर में हमनें शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य की प्राप्ति से व्यक्तित्व विकास के विभिन्न सूत्र सीखे। प्रशिक्षक श्री एस.के. जैन, श्रीमती संतोष जैन एवं डॉ. मोहनलाल जैन ने शरीर विज्ञान और प्रेक्षाध्यान के विभिन्न प्रयोगों की जो जानकारी दी, वह अत्यंत लाभदायक रही है। इस शिविर के द्वारा हमने सीखा कि हम आहार, विहार और नीहार-इन तीनों की सम्यक प्रवृत्ति से व्यक्तित्व का सही विकास कर सकते हैं।

- रजनी दूगड़, चेन्नई

प्रयोगों ने किया दवा का काम

मेरी उम्र 68 वर्ष है। मैं नियमित रूप से किडनी और घुटने के दर्द की दवा लेता था। इस प्रेक्षाध्यान के शिविर में करवाए गए यौगिक क्रियाएं, आसन, ध्यान, अनुप्रेक्षा आदि के प्रयोगों के अभ्यास से मुझे शिविर के दौरान दवा लेने की जरूरत महसूस नहीं हुई। यहां पर मैंने अपने आप को अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ महसूस किया हैं। शिविर में करवाए गए यौगिक क्रियाओं और सभी आसनों के प्रयोग आसानी से किए। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी व्यस्त जिन्दगी से समय निकालकर अपने विकास के लिए प्रेक्षाध्यान के कुछ प्रयोग करने चाहिए।

- सोहनलाल समदड़िया, चेन्नई

स्वास्थ्य में सुधार

पांच दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर में करवाए गए विभिन्न प्रयोगों से स्वास्थ्य में सुधार हुआ। यौगिक क्रियाओं और आसनों के प्रयोग से जोड़ों के दर्द, घुटनों के दर्द में काफी राहत मिली है। कायोत्सर्ग के प्रयोग से असीम शांति का अनुभव हुआ तथा ध्यान के प्रयोगों ने आनंद की अनुभूति करवाई।

- किशनलाल बांठिया, चेन्नई

एसिडिटी में राहत

इस प्रेक्षाध्यान शिविर से मैंने बहुत कुछ पाया है। प्रारंभ में तो बहुत अजीब और अटपटा लगा किन्तु बाद में आनंद आने लगा। ध्यान, प्राणायाम और योग के नियमित अभ्यास से मेरी एसिडिटी की समस्या में राहत मिली। इसके साथ ही ब्लड प्रेशर और शुगर की समस्या में भी आराम लगा। नेती क्रिया के प्रयोग का अनुभव विशिष्ट रहा। जो भी प्रयोग मैंने सीखे हैं, उन्हें अब नियमित करना है।

- पुखराज फुलफगर, चेन्नई

प्रेक्षाध्यान से आत्मा का साक्षात्कार

प्रेक्षाध्यान के शिविर में यह जाना कि जीवन का वास्तविक अर्थ क्या है और आत्मा का स्वरूप क्या है। ध्यान के प्रयोगों से स्वयं को और आत्मा को समझने का एक सुनहरा मौका मिला। जीवन में ज्ञान, सरलता, एकाग्रता, मानसिक शांति और आनंद के महत्त्व को जाना। प्रेक्षाध्यान के प्रयोग में ध्यान के दौरान यह अनुभव किया कि मैं क्या हूं, मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है, यह मनुष्य जीवन किसलिए मिला है और जीवन जीने की सही कला क्या है।

- संगीता, चेन्नई

शरीर में हल्केपन का अनुभव

मैंने पहली बार प्रेक्षाध्यान के शिविर में भाग लिया है। इसमें मैंने बहुत कुछ सीखा और असीम आनंद की अनुभूति की। मेरे साइनेस और माइग्रेन की समस्या रहती थी किन्तु इन चार दिनों में मुझे शरीर में बहुत हल्कापन लगा। मेरे गैस की समस्या में भी फर्क आया है। ऐसे शिविर समय-समय पर लगते रहें तो हमें बहुत लाभ मिलेगा।

- मंजु बैद, चेन्नई

कायोत्सर्ग से आनंद मिला

मैंने कई बार प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों का अभ्यास किया है। किन्तु इस बार कायोत्सर्ग के प्रयोग करने से विशेष प्रकार की अनुभूति हुई। दोनों हाथ एकदम हल्के होकर ऊपर अपने आप उठते रहे और मेरा शरीर पूरा हल्का हो गया। कायोत्सर्ग के प्रयोग के बाद शरीर के कण-का में आनंद की धारा बहने लगी।

- ज्ञानचंद जैन, चेन्नई

एक रामबाण औषधि : प्रेक्षाध्यान

प्रेक्षाध्यान के इस शिविर से मुझे बहुत सीखने को मिला और मेरी अनेक समस्याओं का समाधान भी प्राप्त हुआ। जब मैं इस शिविर में आई थी तब मेरे घुटने में दर्द था और पैर में एक गांठ भी थी। किंतु उस विशेष स्थान पर ध्यान और अनुप्रेक्षा के नियमित प्रयोग द्वारा धीरे-धीरे वह दर्द कम होता चला गया और गांठ भी गायब हो गयी। इसके अलावा मेरे कंधों की हड्डियों में केल्शियम की कमी के कारण घिसावट आ गयी थी। कई प्रकार के इलाज और दवाएं ली किन्तु आराम नहीं मिला। इस शिविर में जो यौगिक क्रियाएं और आसानों के प्रयोग करवाए गए, उनसे मेरी इस समस्या का भी समाधान हो गया। यद्यपि मैंने पहले भी कई शिविरों में सहभगिता की है किन्तु इस बार के प्रेक्षाध्यान के विभिन्न प्रयोग, मेरी समस्याओं के लिए रामबाण औषधि बने हैं।

- रजनी सियाल, चेन्नई

दिनचर्या बदल गयी

मैंने अपने जीवन में पहली बार किसी प्रेक्षाध्यान के शिविर में भाग लिया है। यहां आने से पहले मैं इस ध्यान पद्धति से अपरिचित थी किन्तु यहां आने के बाद इस ध्यान पद्धति को जानने और समझने के बाद मेरी दिनचर्या बदल गयी। ध्यान, अनुप्रेक्षा, प्राणायाम, आसन आदि को अच्छे से समझा और इनकी उपयोगिता को जानकर इनके नियमित प्रयोग का अभ्यास करने का मन बना है।

- प्रीति पिपाड़ा, चेन्नई

A unique technique of well being

I have resided in the USA for the last 17 years. I visit india almost every year. This summer I spent a month in india and about 25 days in Mumbai. However, this summer was very unique because I returned to the USA with an abundant amount of evergy and a positive attitude. The reason for this experience was my attendance at the Preksha Dhyan Yoga Centre which has proved to be magical and wonderful for me. This center runs free of charge under the guidance of Shree Parasmal Dalchandji DugarJi for 365 days and it has been in existence for 10 years.

For the lasy two years, I have been going through some tough times and as a result, i had been feeling depressed. My outlook towards life in general was very negative and i avoided meeting with people. In addition, I had pains and cramps in my stomach and in my knees. I went to my physician and i was recommended an anti-depressant medicine. I was reluctant to start with the medicine so i asked my doctor if there was any alternative. She advised me to do yoga on a regular basis. I attended yoga class here in America, which was only once a week, but i was never motivated to practice it on a regular basis.

But everything changed when I went to India summer. My sister in law, Rupa sanghvi told me that she had been going to Preksha Dhyan Yoga Center for the last five years and it helped her tremendously and cured many of her physical and mental problems. So I decided to give it a try even though I was going to be in india only for a short period of time. I could not beleive it when I started noticing some changes in me. I became more optimistic, energetic, spiritual, and healthy after just a few days of going to the center. Laughing and clapping exercises have given me a fresh look on my face, a positive attitude and vibrant feelings. Shree Parasmalji has introduced slow and vigorous yoga techniques which help people in maintaining their overall well being. I was pleasantly surprised that with in a few days of performing yoga, my stomach problems almost disappeared. If I could feel these changes with in a few days, I am sure the benefits of doing yoga in the long run are amazing.

I am extermely greateful to Shree ParasmalJi for offering this wonderful service to people like me. Different Yoga exercises have been very helpful for physical and mental well being. Other members of the centre gave me the feeling of belongingness and i am truly blessed to have had this opportunity to participate.

I strongly recommend this yoga class to anyone and everyone. I only wish I was there forever so that I could take advantage of these wonderful services on a regular basis and could learn new techniques. I wish the best for everyone in general and to my yoga family members in particular.

-Mrs. Parul Shah

अस्थमा की बीमारी से राहत

कुछ वर्षों पूर्व मुझे अस्थमा की समस्या हुई। एलोपेथिक, होम्योपेथिक, आयुर्वेदिक आदि सभी पद्धतियों से इलाज करवाया किन्तु फायदा नहीं हो रहा था। मैं बहुत परेशान हो चुका था और दर्द से मेरा शरीर बेजान हो गया था। मेरी धर्मपत्नी गीता भी मेरी इस बीमारी से बहुत परेशान थी। वह स्वयं नियमित रूप से ध्यान और योग की कक्षा में जाती थी। उसने मुझे भी कई बार जाने की सलाह दी पर मैंने उसकी बात को अनसुना कर दिया क्योंकि मेरा विश्वास ध्यान और योग में बिल्कुल भी नहीं था।

पत्नी के कई बार कहने और जोर देने पर मैंने एन.सी. जैन के पास योग की कक्षा में जाना प्रारंभ किया। प्रारंभ में तो कभी-कभार अनियमित रूप से ही जाता था किन्तु बाद में नियमित रूप से जाने लगा। नियमित योगा, प्राणायाम और ध्यान के अभ्यास से मुझे काफी फायदा महसूस हुआ। तन, मन बिल्कुल स्वस्थ और स्फूर्तिमय रहता। ऐसा लगता कि नई शक्ति का संचार हो रहा है। प्रेक्षाध्यान ओर योग के नियमित अभ्यास से मेरी अस्थमा की बीमारी सत्तर प्रतिशत तक ठीक हो गयी और मैंने यह अनुभव किया कि किसी को भी मधुर और अच्छा जीवन जीना है तो योग और प्रेक्षाध्यान को जीवन में अपनाएं।

- विक्रम शाह, मुंबई

जीवन में परिवर्तन का अनुभव

प्रेक्षाध्यान के सुव्यवस्थित और समुचित प्रशिक्षण प्राप्त करने से मुझे शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य की प्राप्ति हुई है, इसलिए मैं नियमित रूप से प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों का अभ्यास करती हूं।

ध्यान, प्राणायाम, आसन, अनुप्रेक्षा, ध्वनि, मुद्रा, मंत्र आदि के प्रयोगों से मेरे जीवन में परिवर्तन आया है। ध्यान के नियमित प्रयोग से रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि हुई है। नाड़ी तंत्र संतुलित हुआ है। अनुप्रेक्षा के प्रयोग से मन और चित्त दोनों शांत होते हैं तथा आत्मविश्वास भी बढ़ा है। ज्योति केन्द्र पर ध्यान करने से आवेग, आवेश में कमी का अनुभव हुआ। कायोत्सर्ग के प्रयोग से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की अनुभूति हुई। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों से अवचेतन मन को जागृत करके दृढ़ संकल्पों के साथ सकारात्मक चिंतन का विकास होता है जिससे परम लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

- विमला पी.पटेल, मुंबई

हाई ब्लड प्रेशर की समस्या का इलाज

मैं कई वर्षों से हाई ब्लड प्रेशर की बीमारी से पीड़ित थी। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों के नियमित अभ्यास के बाद मेरी दवा की मात्रा में कमी आयी और शांतिमय जीवन जीने का स्रोत मिल गया। आत्मिक निर्मलता, शांति, प्रेम, करुणा आदि, जो हमारी आत्मा के निजी गुण हैं, उनका परिचय मुझे प्रेक्षाध्यान से हुआ। कायोत्सर्ग के प्रयोग से मेरी हाई ब्लडप्रेशर की तकलीफ कम हुई है और अंर्तमन की यात्रा से सकारात्मक संकल्प बल मजबूत हुआ। मैं व्यक्तिगत रूप से कायोत्सर्ग और ध्यान से बहुत प्रभावित हुयी हूं मुद्रा विज्ञान और कलर थेरेपी के प्रयोग से बिना दवाई के ही कई बीमारियों का इलाज हो गया। मानव कल्याण की उच्च भावना के साथ शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति प्रेक्षाध्यान के द्वारा संभव है।

- उर्वशी बेन जवेरी, मुंबई

बढ़ते चरण .....

प्रेक्षाध्यान अकादमी

कोबा, प्रेक्षा विश्व भारती में स्थित प्रेक्षाध्यान अकादमी के कार्यक्रमों की झलकः-

अडालज। इस अकादमी के तत्त्वावधन में अडालज स्थित मानेकबास्त्री अध्ययनशाला की 170 छात्राओं को प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण दिया गया। तीन दिवसीय कार्यशाला में प्रशिक्षक शंभुदयाल टाक ने छात्रावास की छात्राओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि विद्यार्थी जीवन में भावक्रिया, प्रतिक्रिया विरति, मितभाषण, मिताहार और मैत्री जैसे सूत्रों का पालन करने वाला शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक रूप से स्वस्थ रह सकता है। मुस्कुराते रहने से भी सारी मानसिक पीड़ाएं बाहर निकल जाती है और मानसिक शांति का अनुभव होता है।

इस कार्यक्रम में यौगिक क्रियाएं, हास्य योग, प्राणायाम तथा धयान के चार चर के प्रयोग करवाये गये। शाला की प्रधानाध्यापिका सुरेखा अमृत चौधरी ने प्रेक्षाध्यान एकेडमी का आभार प्रकट किया तथा समाजसेविका डॉ. शांतिबेन शर्मा ने जीवन विज्ञान के प्रेयोगों को अधिक से अधिक विद्यालयों में चलाने का आग्रह किया।

कुड़ासन। कुड़ासन स्थित नवयुग माध्यमिक विद्यालय में छात्र-छात्राओं के बीच जीवन विज्ञान की कार्यशाला आयोजित की गई। प्रशिक्षण शंभुदयाल टाक ने कहा शरीर की स्वस्थता ही हमारे मन को स्वस्थ रख सकती है। मन की स्वस्थता से मस्तिष्क स्वस्थ रहता है और मस्तिष्क स्वस्थ है तो मन पढने में लगेगा और जो याद किया जाएगा, वह लम्बे समय तक याद रहेगा। ज्ञानार्जन में निरन्तर वृद्धि होती रहेगी, परीक्षा परिणाम भी आनन्दित करने वाला आयेगा। इस अवसर पर छात्रों को यौगिक क्रियाओं एवं श्वास की क्रियाओं का अभ्यास करवाया गया।

गुजरात के सरकारी व निजी माध्यमिक विद्यालयों में प्रेक्षाध्यान-जीवन विज्ञान

प्रेक्षाध्यान अकादमी द्वारा चलाए जा रहे प्रेक्षाध्यान जीवन विज्ञान प्रशिक्षण के लिए गांधीनगर (गुजरात) जिला शिक्षा अधिकारी ने गुजरात राज्य के प्रत्येक सरकारी व निजी माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व भावनात्मक विकास हो, इसे ध्यान में रखकर विद्यालयों में प्रार्थना सभा में प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान प्रशिक्षण शुरू करने की लिखित मंजूरी दी है।

प्रेक्षाध्यान अकादमी के अध्यक्ष श्री बाबुलाल सेखानी ने बताया कि प्रेक्षाध्यान जीवन विज्ञान प्रशिक्षण का कार्य विधालयों, महाविधालयों, सरकारी गैर सरकारी विधालयों, संस्थाओं में किया जा रहा है इसके लिए ऐकेडमी द्वारा आवश्यक संसाधन भी उपलब्ध करवाया गया है। शिक्षा, साधना एवं सामाजिक प्रवृत्तियों को गतिशील करना संस्था का मुख्य ध्येय है।

अम्बापुर (गांधीनगर) प्रशिक्षक शंभुदयाल टाक ने छात्रों को नशे से सावधान करते हुए कहा कि ''नशा नाश करने वाला होता है।'' जहां धुम्रपान से फेफड़े व आंखों पर बुरा असर पड़ता है, वहीं जर्दा, गुटका खाने से मुंह और गले का कैंसर होता है। शराब आमाशय फेफड़े व आंतो में कैंसर जैसे घातक रोग फैलाती है।

इस अवसर पर सभी बच्चों को नशा न करने का संकल्प दिलवाया गया। यौगिक क्रियाओं, कायोत्सर्ग व आसनों का अभ्यास भी करवाया गया। प्रधानाचार्य चीनू

भाई पटेल ने कहा कि यह कार्यक्रम विद्यार्थियों के जीवन में परिवर्तन लायेगा और का विधार्थी एक सुयोग्य नागरिक बनकर देश की सेवा करेगा। उन्होंने प्रेक्षाध्यान अकादमी का आभार व्यक्त किया।

कुड़ासन। ग्राम की 'स्कूल ऑफ एचीवर' में 115 छात्र-छात्राओं को प्रेक्षाध्यान जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण दिया गया। प्रशिक्षण में प्रशिक्षक शंभुदयाल टाक ने छात्रों को ज्ञानकेन्द्र प्रेक्षा का प्रयोग करवाते हुए कहा कि मस्तिष्क में हजारों सुप्त शक्तियां हैं जिन्हें जीवन विज्ञान के प्रयोग द्वारा जागृत किया जा सकता है। विधालय के प्रधानाचार्य के.एस. पटेल ने पेक्षा विश्व भारती के प्रति आभार प्रकट किया ओर ऐसी कार्यशालाएं समय-समय पर आयोजित करने के लिए कहा।

रायसण। सर्वोदय विधालय में जीवन विज्ञान एंव योग की कार्यशाला का आयोजन किया गया। प्रशिक्षण शंभुदयाल टाक ने कहा कि जितना भोजन और पानी शरीर के लिए जरूरी है उससे भी ज्यादा शरीर के लिए ऑक्सीजन (प्राणवायु) की आवश्यकता होती है। हमें ऑक्सीजन की पूरी मात्रा को लेना ही नहीं आता। छोटे-छोटे और अधूरे श्वास से शरीर में ऑक्सीजन की मात्रा कम पहुंचती हैं। हमेशा गहरा लंबा शवास लेना चाहिए। नित्य प्राणायाम करने से शवास सम्यक् होता है। प्रशिक्षक ने छात्रों को श्वास की क्रियाएं एवं सम्पूर्ण शरीर की यौगिक क्रियाओं के प्रयोग करवाये।

अम्बापुर ग्राम एवं पोर ग्राम स्थानीय प्राथमिक शाला में विद्यार्थियों को महाप्राण ध्वनि, विभिन्न प्रकार के आसनों, प्राणायाम तथा कायोत्सर्ग, दीर्घश्वास का प्रशिक्षण देते हुए प्रशिक्षक शंभुदयाल टाक ने बताया कि महाप्राण ध्वनि से उच्चारण में शुद्धता आती है, आवाज मधुर बनती है तथा ज्ञान तन्तु सक्रिय होने से स्मरण शक्ति का विकास होता है। आसनों के द्वारा एकाग्रता का विकास होता है। अस्थितंत्र एवं पेशितन्त्र मजबूत होता है। जिसकी वजह से अनेक बीमारियों से मुक्ति मिलती है। कार्यक्रम के अंत में सभी बच्चों को नशा न करने का संकल्प करवाया गया। इस अवसर पर अम्बापुर ग्राम की शाला की प्राचार्या श्रीमती सोमनाबेन पटेल ने प्रेक्षा विश्व भारती का आभार व्यक्त किया।

जीवन विज्ञान शिक्षक- प्रशिक्षण कार्यशाला

लाडनूं। जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय के दूरस्थ शिक्षा निदेशालय द्वारा 19 सितम्बर से 24 सितम्बर तक आयोजित छः दिवसीय शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यशाला के समापन पर प्रो. मुनिश्री महेन्द्र कुमार ने कहा कि समाज में अनेक समस्याएं हैं जिनका समाधान सही समझ से होता है। सही समझ का विकास जीवन विज्ञान की शिक्षा से होता है। यह प्रशिक्षण कार्यशाला एक ज्ञान यज्ञ है इस कार्यशाला में जो कुछ सीखा है, उसे बांटना है। दीप से दीप जलाकर इस अभियान को महाअभियान बनाना है। दूरस्थ शिक्षा निदेशालय के निदेशक डॉ. आनंद प्रकाश त्रिपाठी ने कहा कि जीवन विज्ञान व्यक्तित्व विकास का माध्यम है। इस शिक्षा को जन-जन तक पहुंचाने के लिए लोगों को निरन्तर प्रयास करने हैं। इस छः दिवसीय कार्यशाला में कोलकाता, दिल्ली, इन्दौर, उज्जैन, अहमदाबाद, फैजाबाद, सुल्तानपुर, पीलीबंगा, हनुमानगढ़, भिवानी, सीकर, सरदारशहर, अलवर, जयपुर आदि स्थानों से 42 संभागियों ने भाग लिया। इस कार्यशाला में डॉ. संजीव गुप्ता, डॉ. अशोक भास्कर, युवराज सिंह, डॉ. प्रद्युम्न सिंह, समणी श्रेयस प्रज्ञा एवं रामदेवराम ने विशेष प्रशिक्षण दिये।

प्रो. मुनि महेन्द्र कुमार, प्रो. जे.पी.एन. मिश्रा, डॉ. आनंद प्रकाश त्रिपाठी एवं डॉ. समणी मल्लीप्रज्ञा के विशेष व्याख्यान भी हुए। समापन अवसर पर जयपुर के उमेन्द्र कुमार गोयल एवं कोलकाता की चेताली दत्ता ने अपने अनुभवों में कार्यक्रम की गुणवत्ता की प्रशंसा करते हुए इसे नियमित आयोजित करने पर जोर दिया। कार्यक्रम के समन्वयक डॉ. संजीव गुप्ता ने कार्यक्रम की सफलता के लिए सभी के प्रति आभार व्यक्त किया।

नशा मुक्ति : ध्यान के द्वारा

कोयम्बटूर। अणुव्रत समिति के तत्त्वावधान में श्री नेहरू विद्यालय के शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं राष्ट्रीय अणुव्रत शिक्षक संगोष्ठी की संयुक्त उपस्थिति में एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। राष्ट्रीय अणुव्रत शिक्षक संसद के अध्यक्ष डॉ. हीरालाल श्रीमाली ने विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा कि विद्यार्थी अपने कार्यों के द्वारा उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकते हैं। विद्यार्थियों को नकल करने की अपेक्षा अपनी अक्ल, स्मरण शक्ति और एकाग्रता को बढ़ाना चाहिए। व्यसन मुक्त जीवन के द्वारा उन्हें अपनी स्मरण शक्ति व संकल्प शक्ति को बढ़ना चाहिए। धर्मचंद जैन ने विद्यार्थियों में स्मरण शक्ति व संकल्प शक्ति बढ़ाने के लिए महाप्राण ध्वनि, मुद्रा आदि के प्रयोग करवाए। अणुव्रत समिति के अध्यक्ष डॉ. गणेशन ने विद्यार्थियों को कहा कि मस्तिष्क व शरीर दोनों के स्वस्थ रहने पर ही शिक्षा की सार्थकता सिद्ध होगी। इस आयोजन के अन्त में नरेन्द्र रांका ने आभार ज्ञापित किया। कार्यक्रम में प्रेम सुराणा, पुनीत, चंद्रशेखर सेनबेगम, रमेश आदि की सक्रिय भूमिका रही।

अष्टदिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर

सोलापुर। योग साधना मंडल, सोलापुर एवं तेरापंथ समाज, सोलापुर के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित अष्टदिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर में लगभग 55 स्त्री-पुरुषों ने भाग लिया। इस प्रेक्षाध्यान शिविर में प्रेक्षा प्रशिक्षक डॉ. शांतिलाल सेठिया ने प्रशिक्षण देते हुए चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा, स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा, यौगिक क्रियाएं आदि की जानकारी दी एवं प्रयोग करवाए। उन्होंने चार्टस व मॉडल्स की सहायता से शरीर विज्ञान के आधार पर शरीर के चैतन्य केन्द्रों की जानकारी भी दी। इस शिविर की समायोजना में विनोद सेठिया, रोहिणी, कैलाश कोठारी, पदमचंद सुराणा, मोहनलाल कोचर, तिलोकचंद बोथरा आदि का सक्रिय सहयोग रहा।

प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन

चेन्नई। साध्वीश्री कीर्तिलता के सान्निध्य में एवं तेरापंथ महिला मण्डल के तत्त्वावधान में साउकारपेट सभा भवन में प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। महिला मण्डल अध्यक्ष सुमन बरमेचा ने स्वागत भाषण दिया। दिल्ली से समागत प्रशिक्षक एस.के. जैन व श्रीमती संतोष जैन का परिचय मंत्री प्रेम सुराणा ने दिया। संतोषजी जैन ने दीर्घश्वास प्रेक्षा, ज्योति केन्द्र प्रेक्षा आदि के अनेक प्रयोग करवाये। साध्वीश्री पूनम प्रभा ने मंत्रों के बारे में बताया। डॉ. मोहनलाल ने यौगिक क्रियाओं एवं स्वास्थ्य के बारे में जानदारी दी। रात्रिकालीन सत्र में जिज्ञासा व समाधान की कक्षायें ली गई। शिविर में करीब सत्तर भाई-बहिनों ने भाग लिया। धन्यवाद मंत्री प्रेम सुराणा ने सम्प्रेषित किया।

चार दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर

कांचीपुरम। मुनिश्री धर्मेश कुमारजी के सान्निध्य में चार दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर आयोजित किया गया। इस शिविर में कांचीपुरम, बालाजाबाद, टिण्डीवनम, चेन्नई आदि एवं आस-पास के क्षेत्रों के लगभग 44 शिविरार्थियों ने भाग लिया। इस शिविर में प्रशिक्षकों के रूप में श्रीमान एस.के. जैन, संतोष बाई जैन, श्री भंवरलालजी चौपड़ा, श्री माणकचंदजी रांका, डॉ. मोहनलाल दूगड़, श्रीमती चन्दाबाई धोका ने अपनी सेवाएं दी। शिविरार्थियों को श्वास लेने की कला, आहार संयम, ध्यान क्यों व कैसे आदि विषयों पर सैद्धान्तिक व प्रायोगिक प्रशिक्षण दिया गया। आसन व प्राणायाम की उपयोगिता व विधि बताते हुए प्रशिक्षकों ने उनके पय्रोग भी करवाए। मुनिश्री धर्मेश कुमारजी ने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन कम से कम 15-20 मिनट प्रेक्षाध्यान के प्रयोग करने चाहिए। जिससे जीवन में सकारात्मक परिवर्तन होंगे। शिविर में भाग लेने वाले शिविरार्थियों ने प्रतिदिन प्रेक्षाध्यान के प्रयोग करने का संकल्प लिया। इस शिविर की आयोजना में तेरापंथी सभा, तेरापंथ महिला मंडल, तेरापंथ युवक परिषद आदि का विशेष सहयोग रहा।

संस्कार निर्माण कार्यशाला में प्रेक्षाध्यान के प्रयोग

दक्षिण मुम्बई। साध्वीश्री अशोकश्रीजी के सान्निध्य में बच्चों का एक दिवसीय संस्कार निर्माण शिविर आयोजित किया गया जिसमें मुम्बई के विभिन्न क्षेत्रों के लगभग 155 बच्चों ने भाग लिया। साध्वीश्री अशोकश्री ने बच्चों को पाथेय प्रदान करवाते हुए कहा कि बच्चों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक है कि उन्हें शिक्षा के साथ संस्कार भी मिले। शिविरों के माध्यम से बच्चों में एक-दूसरे की प्रति सद्भावना का विकास व आध्यात्मिक संस्कार भी पुष्ट होते हैं। साध्वीश्री मंजुयशाजी ने बच्चों को दीर्घश्वास प्रेक्षा, महाप्राण ध्वनि, स्मृति विकास का प्रशिक्षण देते हुए इनके विधिवत प्रयोग करवाए। इस कार्यक्रम के संचालन में ज्ञानशाला प्रशिक्षिकाओं, श्री मुकेश धाकड़, भरत मेहता, महिला मण्डल तथा महाप्रज्ञ पब्लिक स्कूल के ट्रस्टियों का अच्छा सहयोग रहा।

जीवन विज्ञान दिवस 8 नवम्बर को

आचार्यश्री महाप्रज्ञ को प्रदत्त **''महाप्रज्ञ अलंकरण''** के उपलक्ष में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाला **''जीवन विज्ञान दिवस''** इस वर्ष 8 नवम्बर 2011 को मनाया जायेगा। यह पावन दिवस भव्य प्रेरणादायी और संस्कारक्षम बनें, इस हेतु आप भी अपने क्षेत्रों में इस दिवस पर जीवन विज्ञान से संबंधित निबंध, वाद-विवाद, भाषण, प्रश्नमंच आदि प्रतियोगिताएं एवं रैली का आयोजन कर जीवन विज्ञान को जन-जन तक पहुंचाने में भागीदारी निभाएं। अपने यहां आयोजित कार्यक्रम की रिपोर्ट केन्द्र में निवेदनार्थ अवश्य भेजें।

-निवेदक

केन्द्रीय जीवन विज्ञान अकादमी,

जैन विश्व भारती, लाडनूं

विचार

अपरिग्रह

फुटबाल की तरह धन का खेल होना चाहिए। गेंद को कोई अपने पास नहीं रखता। वह जिसके पास पहुंचती है, वही उसे फेंक देता है। पैसे को इस तरह फेंकते जाइए तो समाज में उसका प्रवाह बहता रहेगा और समाज का आरोग्य कायम रहेगा। वे कहते हैं-परिग्रह में वह शक्ति हरगिज नहीं हो सकती जो शक्ति अपरिग्रह में है। इसकी मिशाल अपनी यह देह है। इस देह में सारा खून बंटा हुआ है यानि इसमें अपरिग्रह है। अगर खून का परिग्रह हो जाए तो.....? परिग्रह में शक्ति नहीं, दुर्बलता हो सकती है। अपरिग्रह का अर्थ है महान्, बंटा हुआ परिग्रह। अपरिग्रह की योजना में एक कौड़ी भी पड़ी नहीं रहेगी। वह हर क्षण उत्पादन में लगी रहेगी। मैंने देखा कि यहां पर बच्चों के नाम में भेद होता है और उसमें सोना पड़ा हुआ होता है, तो उतना देश का उत्पादन कम होता है। वह सोना खान में पड़ा था तो क्या खराब था? यहां नाम में पड़ा है तो क्या अच्छा है? अगर वह स्वर्ण उत्पादन के काम में आ जाए तो जाहिर है कि उत्पादन बढ़ेगा।

- विनोबा भावे

: With Best Compliments :
Chainroop Chindalia, Sardarshahar-Kolkata

Shed the 'I', Renounce the 'Mine', Everything will be your, Forever.

-Acharya Mahapragya

With best compliments from :

Ratanlal Basant Kumar Parakh (Churu) Kolkata

ORBIT GROUP

... BUILDING RELATIONSHIPS

The Orbit, 1 Garstin Place, Kolkata-700 001 Ph: 4011 9050 (20 lines)

Fax: 2210 1256 email: info@orbitgroup.net | www.orbitgroup.net

Orbit Residences. The key to high living.

If undelivered please return to : Jain Vishva Bharati, Ladnun - 341306, Dist. Nagaur (Raj.) Ph. : 01581-222080